वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य।

(लेखक-प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न कांगडी)

श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते है–

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडीके वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य-जगत् का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ मे बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते है, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय मे इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते है–

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान है। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनमें समर्थ हो सकें।

श्री० मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रंथ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमे प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए-ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मै आपको मंगल-वाद करता हू। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिये। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ५ आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता—प्रबन्धकर्ता अलंकार, गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

श्रीमंत बाळासाहेब पंत, बी. ए., प्रतिनिधि, संस्थान औंध.

भारतमुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल, औंध, जि० सातारा.

मनोरंजन प्रेस, मुंबई.

अंक १०

क्रमांक ७०

आश्विन

संवत् १९८२

अक्तूबर

सन १९२५

वैदिकधर्म.

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल औंध (जि सातारा)

तपसे मातृभूमिकी सेवा ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥

अथर्व १२ । १ । ३९

(यस्यां) जिस भूमिमें (पूर्वे) पूर्ण (वेधसः) ज्ञानी (भूतकृतः) देशके भूत को बनानेवाले (ऋषय.) ऋषिलोग महा तपस्वी पुण्यपुरुष (सत्रेण) सज्जनोंके पालन करनेके (यज्ञेन) सत्कर्म और (तपसा) शीतोष्ण सहन करनेके बलके (सह) साथ (सप्त) सात (गाः) इद्रियों छंदों या वेदवाणीका (उत् आनृचुः) उत्तम प्रकार से सत्कार करते आये हैं ।

हमारी मातृभूमिके संपूर्ण ज्ञानी जन प्रजापालक शुभ कर्म करते और उत्तम कर्मानुष्ठानसे गौ, वाणी, और भूमिका सत्कार करते आये हैं । इसी कारण हमारी मातृभूमि अत्यंत पवित्र है । और हमें इसीके लिये आत्मसमर्पण करना चाहिये ।

[शुद्धि संस्कार कैसा होना चाहिये इस विषय की पृच्छा करने वाले कई पत्र हमारे पास आगये। हरएक का अलग अलग उत्तर देना असंभव है इसलिये इस विषयको आज इस लेखद्वारा हम पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करते हैं।

यह लेख श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव विद्यानिधि का लिखा हुआ है। पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजी सनातनी पुराणमतवादी पंडित होते हुएभी महाराष्ट्र में शुद्धिका कार्य बडे जोरशोरसे कर रहे हैं। इस समयतक बीसियों महाशयोंको इन्होंने पुनः स्वधर्म में लिया है और इनका कार्य आगे जारी है। महाराष्ट्र में पुराणमतवादी पंडितोंका जोर बहुत है। तथापि इस विरोधको सहन करके भी श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजी अपना कार्य चला रहे हैं। इसलिये इनका गौरव हरएक को करना उचित है।

आज जो लेख श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजीका हम यहां प्रस्तुत कर रहे है वह शुद्धिसंस्कारके लिये शास्त्रप्रमाणों से सुशोभित है। यद्यपि इस लेखके कई प्रमाणोंके साथ पूर्णांशमें पाठक सहानुभूति नहीं रख सकेंगे, तथापि यह लेख पुराणमतावलंबी लोगोंके आक्षेपोका उत्तर उन्हीके प्रमाण ग्रंथों के वचनोंद्वारा देने के लिये लिखा है यह बात ध्यानमें धरने से इस लेख का महत्व उसी समय ध्यानमें आसकता है।

आशा है कि स्मृतिग्रंथोके वचनोंद्वारा इस शुद्धि का विचार पाठक करेंगे और शुद्धिके महत्त्वपूर्ण विषयसे अपने आपको पराङ्मुख नहीं रखेंगे और इस शुद्धिका कार्य अपने नगरमें करके अपने समाज का उद्धार करनेमें प्रमुख कार्य करनेके भागी होंगे—

संपादक—"वैदिक धर्म"]

शुद्धिसंस्कार।

(लेखक-श्री. पं. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, विद्यानिधि, पूना)

शुद्धि संस्कार की विधि कई वर्षों से बनकर तैयार होने पर भी अनेक कारणों से वह आज तक छप न सकी। उनमें से मुख्य कारण यह था कि इस विधिको शास्त्रज्ञ लोगोंसे स्वीकृत होने में बहुत देर लगी। उनकी सम्मतिप्राप्त करने की, और हो सकी वहाँ तक विधि सशास्त्र बनाने की, हमने यथाशक्ति चेष्टा की। विधि परिषद् में उपस्थित की गई, शास्त्रज्ञों को बताई गई, और विधि करने में निपुण याज्ञिक

लोगों के सम्मुख भी रखी गई। और उन सबसे विचार विनिमय करने के उपरान्त उनकी सम्मति से ही इस विधि की रचना की गई है।

विधि बनाते समय यदि हमारे सामने कोई कठिन समस्या थी तो वह यही थी कि विधि सशास्त्र और व्यवहार्य दोनों किस प्रकार हो सकेगी। केवल विधि की सशास्त्रता पर ही ध्यान देने से सम्भव था कि विधि इतनी लम्बी चौडी और असुविधापूर्ण होती कि बिना याज्ञिक के काम न चलता। ऐसी दशा में विधिका होना न होना बराबर ही था। उसी प्रकार यदि वह केवल व्यवहार्य ही होती परंतु शास्त्र-सम्मत न होती, तो उसके आचरण से लाभ ही क्या? ऐसे पेंच में से मार्ग निकालना एक अत्यंत दुष्कर कार्य था। सशास्त्रता केवल वचनो के द्वारा ही सिद्ध नहीं की जा सकती। पुराने मार्ग से चलने वाले लोगों के आचार विचारों से जब उस विधि का मेल हो तभी वह सशास्त्र मानी जा सकती है। ऐसी दशा में आवश्यक था कि विधि बनाते समय उन लोगों के आचार विचार और व्यवहार की ओर भी ध्यान दिया जाय। इसलिए इन बातोंका भी सूक्ष्म निरीक्षण करना पडा।

इन दोनों बातों के साथ ही इस बात का विचार करना भी अत्यावश्यक है कि विधि करते समय साधक के मन में कहीं यह भाव न उत्पन्न हो कि मेरे महान् पापकी निष्कृति के लिए जो विधि की जा रही है वह निरा आडम्बर है; उस में सत्य कुछ भी नहीं। कारण जिस एक कार्य ने उसे अपने धर्म से, अपने समाज से और अपने बंधुओंसे दूर किया, जिस एक कार्य के कारण वह समाज के द्वारा केवल बहिष्कृत ही नहीं तो मुखावलोकन के लिए भी अयोग्य ठहराया गया, उस बडे अपराध के लिए वह अवश्य ही समाज से किसी बडे दण्ड की अपेक्षा और उस योग्य भी समझेगा। परंतु जब वह देखेगा कि इतने बडे दण्ड का काम केवल छोटे से प्रायश्चित्त से ही लिया जा रहा है तो अवश्य ही उसके मन पर इसका अनिष्ट और विपरीत परिणाम होगा। ये बातें भी विधि तैयार करते समय विचारणीय थीं।

विधि करते समय इन बातों की ओर भी ध्यान रहना चाहिए कि इस धर्मांतर की विधि के द्वारा हमें किस प्रकार के विचारों का प्रसार करना है, इससे साधक और प्रेक्षकों के मन मे कौनसी भावनाएं उत्पन्न करना है। धर्मांतर करनेका समय तो इस लोकमें और परलोकमे शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होने का अवसर होता है। इस समय इष्ट है कि साधक के मन में अच्छी भावनाएँ उत्पन्न हों उसे इन बातों पर पूर्ण विश्वास हो जाय कि विधि करने के पूर्व जैसा मैं था वैसा अब न रहा; अब मै अत्यंत पवित्र हूँ, मैं अत्यत ऊँचे स्थान पर पहुंच गया हूँ, मेरे मन में सहसा विलक्षण परिवर्तन हो गया है, मै परमेश्वर के पास आगया हूँ; मेरे सहाय्यार्थ परमेश्वर दौडा आरहा है; श्री रामचंद्र, भगवान् श्रीकृष्ण इत्यादि मेरे साहाय्य के लिए तत्पर खडे हैं। अर्थात् इस विधि में इतनी गंभीरता, उदात्तता, शांतता, पवित्रता और सुसंबद्धता होनी चाहिए कि साधक अपने शरीर, मन, वचन, वस्त्र, आचार, विचार इत्यादि मे होने वाले परिवर्तन का अनुभव कर सके और उनकी सत्यता में उसे विश्वास आजाय।

अपने शास्त्रों में उपनयन, विवाह इत्यादि संस्कारों की रचना इसी प्रकार की गई है। उन में से प्रत्येक बातको कोई ध्यान पूर्वक देखेगा तो उसे हमारे कथन की सत्यता प्रतीत होगी। बहुतसे

लोगों की कल्पना है कि उपनयन का अर्थ केवल पाठशाला में भरती करने का उत्सव या गायत्री मंत्र का उपदेश है, साथ की जाने वाली बाकी सब बातें झूठ हैं। परंतु यदि इस विधि का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो सहजही दिखाई देगा कि उस में की छोटी से छोटी बात भी साधक के मन में परिवर्तन करने में समर्थ है। साधक को अपने उत्तरदायित्व से परिचित कराने में उसका बहुत ही उपयोग होता है। इस विषय में अधिक कहने की कुछ आवश्यकता नहीं। इसी लिए ऐसे समय लोगों को निमंत्रित करना, विधि स्थानको स्वच्छ रखना झंडियों से, पेडों के हरेहरे पत्तों से जगह को सजाना बैठक का ठीक बंदोबस्त करना; विधि के लिये लगने वाला साहित्य साफ और व्यवस्थित रूप में रखना आदि बातें बहुत आवश्यक हैं। विधि करनेवाले को चाहिए कि वह पवित्र वस्त्र पहिनकर शुद्धता से अपने आसन पर बैठे। आस पास देखने से ही साधक के मन में यह भाव उत्पन्न हो कि आज कोई अत्यंत महत्वपूर्ण और गंभीर कार्य होनेवाला है। और दूसरों के मन में यह विचार हो कि आज किसी राह भूले हुए जीवको हम सन्मार्ग पर लाकर उसे परमेश्वर-प्राप्ति की सीधी रास्ता बता रहे हैं। इस विधि का इस प्रकार परस्पर परिणाम होना चाहिए। विधि की सशास्त्रता और व्यवहार्यता के साथ ही साथ और एक महत्वकी बात भी भूलना नहीं चाहिए। विधि करने वाला नया और अननुभवी हो पर भी उपर्युक्त उद्देश की पूर्ति होना चाहिए।

इनके सिवा दूसरी अनेक अडचनें हैं। परंतु उनका महत्व गौण होने से प्रत्यक्ष विधि करने में उनसे कोई रुकावट होने का संभव नहीं। इस लिए अब हम विधिविषयक शास्त्रीय बातों का विवरण देते हैं।

धर्म-शास्त्र के अनुसार यह बात अत्यंत महत्व की है कि प्रायश्चित्त लेने के पूर्व जिस पाप के लिये वह प्रायश्चित्त लिया जा रहा है उसकी जाति और वर्ग पहिले निश्चित करके यह देखा जाय कि उस प्रकार के पाप के लिये कौनसा प्रायश्चित्त बताया गया है; और इस प्रकार प्रायश्चित्त निश्चित हो जाने पर उसे लेकर मनुष्य शुद्ध हो। इस अनुक्रम से सब बातें होनी चाहिए। प्रायश्चित्त का अर्थ निम्न रीति से समझाया जाता है।

मनुस्मृति में प्रायश्चित्त शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है:—

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥
अध्याय ११। ४८

अर्थः—' प्राय.' अर्थात् तप और 'चित्त' अर्थात् निश्चय। जो तप और निश्चय से संयुक्त हो वह प्रायश्चित्त है।

कहीं कहीं प्रायश्चित्त का अर्थ यों भी किया जाता है:—

प्रायः पापं विजानीयात् चित्तं तस्य विशोधनम्।
' प्रायः' याने पाप और ' चित्त' याने पापकी शुद्धि। जो पापकी निष्कृति के लिये किया जाय वह प्रायश्चित्त है प्रायश्चित्त का यह अर्थ सर्व मान्य है।

विज्ञानेश्वर ने भी मिताक्षरी में ऐसा ही कहा है
प्रायश्चित्तशब्दश्चायं पापक्षयार्थे नैमित्तिके कर्मविशेषे रूढः।

प्रायश्चित्त लेने के कारण भी सामान्य और विशेष रूप से सब धर्म ग्रंथों में दिये गए हैं।

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥
मनु ११। ४४

इस अर्थ का याज्ञवल्क्य-स्मृति में दिया हुआ श्लोक इस प्रकार का है:—

विहितस्याननुष्ठानात् निंदितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
या. प्राय. २१९ ।

शास्त्रविहितबातें न करनेसे, निन्द्यबातें करनेसे और इंद्रिय-लोलुप होनेसे मनुष्य प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

यदि मनुष्य सामान्य या महापातक सरीखा कोई विशेष पाप करे और प्रायश्चित्त न ले तो उस-की इहलोक में और परलोक में हानि होती है और उसकी आत्मा के विकास में बाधा होकर वह अधो गति को पहुंचता है।

इसी लिए स्मृतिकारों ने कहा है कि ऐसे मनुष्य अवश्य प्रायश्चित्त लें। देखो –

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निंद्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥
म. स्मृ. ११।२६

अर्थः—इसी लिए किए हुए पाप की निष्कृती के लिए अवश्य प्रायश्चित्त लेना चाहिए। कारण यदि प्रायश्चित्त न लिया जावे तो पापी मनुष्यों को निन्द्य जन्म प्राप्त होते हैं।

तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यांतरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

अर्थः—इसलिए पातकी मनुष्य को प्रायश्चित्त लेना चाहिए। प्रायश्चित्त लेनेसे मानसिक शुद्धि होती है और लोग भी प्रसन्न होते हैं।

बड़े बड़े पातकों के करने से दो दोष उत्पन्न होते हैं एक तो आत्मा का पतन और दूसरा अव्य-वहार्यता। किसी भी किए हुए पाप के लिए प्रायश्चि-त्त लेने से व्यवहार्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है परंतु आत्मा का पतन नहीं टल सकता। परंतु जिन पातकों से मनुष्य विशेष दोषी नहीं होता उन में यह अड़चन नहीं है। उस दशा में प्रायश्चित्त के द्वारा मनुष्य व्यवहार्य और पापमुक्त भी होता है।

पातकों के दो प्रकार हैं; बुद्धिपुरःसर किये हुए पाप और अज्ञानतः किये हुए पाप। अज्ञानतः किये हुए पाप के लिये प्रायश्चित्त लेने से पापनिवृत्ति और व्यवहार्यता दोनों साध्य होती हैं। यह बात निम्न वचनों से स्पष्ट मालूम होती है:—

प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत ।
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥
प्राय० २२६

परंतु मनुमें बताया गया है कि अनिच्छापूर्वक किये हुए पाप के लिये छोटा प्रायश्चित्त और इच्छा पूर्वक किये हुए पाप के लिये बड़ा प्रायश्चित्त लेनेसे मनुष्य पापनिर्मुक्त और संव्यवहार्य होता है और इस के लिये श्रुति का प्रमाण भी दिया गया है। देखीये-

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥
मनुस्मृति ११ । ४५

अर्थ - अनिच्छापूर्वक किये हुए पातक के लिये विद्वानों ने प्रायश्चित्त बताया है। और कई श्रेष्ठ लो-गोंका मत है कि इच्छापूर्वक किये हुए पातकके लिए भी श्रुति में प्रायश्चित्त बताया है—

इस का आधार यह है: –

इंद्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् । तमश्ली-ला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपधावत्।तस्मात्तमुपहव्यं प्रायच्छत् ।

इंद्रने जानते हुए भी सन्यासियों को कुत्तों के बीचमें फँसा दिया और उन्हें गालियाँ दीं। फिर वह प्रा-यश्चित्त माँगने के लिये प्रजापति के पास गया। प्रजा पति ने उसे 'उपहव्य' नामक प्रायश्चित्त दिया।

इस पर से सिद्ध होता है कि ज्ञान पूर्वक किये हुए पाप के लिये भी प्रायश्चित्त रहता है। इसी कारण मनुने भी कहा है कि जानते हुए किये हुये पापों के लिये प्रायश्चित्त लेने से मनुष्य शुद्ध होता है।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः॥
॥ ११। ४६

इन सब बातों पर से सिद्ध होता है कि हरएक पाप के लिये चाहे वह पाप बुद्धिपूर्वक किया हो या अज्ञानतापूर्वक, प्रायश्चित्त कर के पापी मनुष्य शुद्ध हो सकता है।

कोई भी प्रायश्चित्त लेने के पहिले जिस कार्य के बदले वह प्रायश्चित्त लिया जा रहा है उस का पश्चात्ताप होना चाहिए। पश्चात्ताप के सिवा प्रायश्चित्त न लिया जा सकता है और न दिया ही जा सकता है।

प्रायश्चित्तं तु तस्यैव कर्तव्यं नेतरस्य तु।
जातानुतापस्य भवेत्प्रायश्चित्तं यथोदितम्॥
नानुतप्तस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते।
नाश्वमेधफलेनापि नानुतापी विशुध्यति॥
वृद्धहारीत ९। २२३। २२४

जिसे पश्चात्ताप हुआ हो उस मनुष्य को ही प्रायश्चित्त दिया जावे। दूसरों को नहीं। बिना पश्चात्ताप के यदि अश्वमेध भी किया जावे तो भी मनुष्य शुद्ध नहीं होता। इस प्रकार का विवेचन कई जगह पाया जाता है। परंतु इस बात का कहीं भी निषेध नहीं है कि पश्चात्ताप उत्पन्न करने वाला और असत्य धर्मावलम्बी लोगोंद्वारा फैलाए हुए जाल और कपट का ज्ञान कराने वाला धर्मोपदेश लोगों को किया जाय।

अब आगे इस बात का विचार किया जायगा कि परधर्म स्वीकार करना पातकशास्त्र के अनुसार किस प्रकार का पाप है और उस प्रकार के पातकों के लिये योग्य प्रायश्चित्त क्या होगा।

शास्त्रों में सामान्यतःपातकों के प्रकार निम्नानुसार किये जाते हैं —

१ महापातक २अतिपातक ३अनुपातक ४ उपपातक ५ प्रकीर्णपातक।

इनमें से महापातक, अतिपातक और अनुपातक प्रायः समान ही हैं। उपपातक पातकों का दूसरा प्रकार है। और जिनका प्रत्यक्ष उच्चार कर कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया वे प्रकीर्ण पातक हैं।

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, गुरुपत्नीगमन और तत्संसर्ग इत्यादि पातकों में धर्मांतर का समावेश नहीं हो सकता। क्यों कि धर्मांतर में उस प्रकार का कोई भी दोष नहीं होता।

यदि केवल मनु और याज्ञवल्क्य के ग्रंथानुसार ही विचार किया जावे तो जिन पापों का उपपातकों में समावेश किया गया है उन्हीं में इसे भी रखना चाहिये। 'असच्छास्त्राभिगमनं' और 'नास्तिक्य' (मनु. अ० ११। ६५ – ६६ और याज्ञ प्रा० २४२-- २३६) इत्यादि शब्दों से जो उपपातक संबोधित हैं उनका अर्थ केवल वैदिक धर्म को छोड़कर किसी दूसरे ऐसे धर्म का जो एक व्यक्तिनिष्ठ हो और जिसमें विचार बुद्धि का साधन न हो दीक्षापूर्वक स्वीकार करना है। कुछ विचार करने के उपरान्त ये बातें सरलतासे समझमें आसक्ती हैं।

धर्मभ्रष्ट होना उपपातक रूप है और इस लिये उपपातकों की निष्कृति के लिए जो प्रायश्चित्त दिए गए हैं वे ही प्रायश्चित्त इसके लिए भी करने योग्य होंगे। देखिए–

उपपातकशुद्धिः स्यादेव चांद्रायणेन वा ।
पयसा वापि मासेन पराकेणथवा पुनः ॥
या० प्र० २६५

अर्थ — उपपातक की शुद्धि एक महीने तक पंचगव्य लेने से, चांद्रायण करने से, या महीने भर दूध पर रहने से या पराक प्रायश्चित्त करने से होती है।

परंतु इस बात का भी विचार करना आवश्यक है कि जब लोग फंसाकर धर्मभ्रष्ट किए जाते हैं तब किस प्रकार का प्रायश्चित्त देना योग्य होगा।

म्लेच्छैर्नीतो यदा शूद्रस्त्वज्ञानात्तु कथंचन ।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ज्ञानात्तु द्विगुणं भवेत् ॥
मि० प्रा० २२६

अर्थ—यदि म्लेच्छों ने शूद्र को कपट से धर्मभ्रष्ट किया हो तो कृच्छ्रत्रय प्रायश्चित्त करना चाहिए। इस विषयमें देवल स्मृति देखिए।

प्रसंगवशात् इस जगह धर्मांतर का अर्थ बताना अनुचित न होगा। धर्मांतर शब्द का प्रचलित अर्थ यह है कि मुसलमान या ईसाई बन जाना। और हम भी यही अर्थ लेते हैं। हिंदूधर्म को छोडकर बाकी के सब धर्म धर्मांतर शब्द से संबोधित होते हैं। उनमें से किसी भी धर्म को दीक्षा पूर्वक स्वीकार करना धर्मांतर कहलाता है। ईसाई धर्मको स्वीकार करते समय मद्य पीना पडता है। परंतु केवल मद्यमांस भक्षण से धर्मांतर नहीं होता। मिश्र विवाह से या किसी दूसरे धर्मका अभ्यास करने से भी धर्मांतर नहीं होता। आज भी कई हिंदू ऐसे है जिन्हे मद्यमास– भक्षण की धर्मानुमति है वे ऐसे वैसे नहीं तो उच्च हिंदू हैं। केवल ब्राह्मण और उसी प्रकार के अन्य कुछ लोग मद्यमांस को नहीं छूते। बाकी सब हिंदू मद्यमास का सेवन करते है। परंतु इस कारण वे पतित नहीं बन जाते। मिश्रविवाह भी हिन्दुओं में होते हैं। ज्ञानसंपादन का विरोध तो वैदिक धर्म मे कहीं भी नहीं मिलता। ऐसी दशा मे दीक्षापूर्वक परधर्म का स्वीकार यही धर्मांतर का अर्थ हो सकता है। जिसने इस प्रकार धर्मांतर किया हो वह प्रायश्चित्त के द्वारा हिंदुधर्म में वापिस लिया जाना चाहिये। इस पर से धर्मांतर का अर्थ स्पष्ट होगया होगा।

अब यह भी बताना चाहिए कि शुद्ध कर लेने का क्या अर्थ होता है। सत्य और मोक्षप्रद धर्म को छोडकर मिथ्या और अधोगति को ले जानेवाले धर्म का स्वीकार करने से जो पातक हुआ, उसकी निष्कृति के लिए प्रायश्चित्त लेकर फिरसे स्वधर्म के आचार विचारों का ग्रहण करना है।

पतित परावर्तन करते समय जाति – समावेश का प्रश्न महत्वपूर्ण होता है। उसका संक्षेप में इस प्रकार निर्णय कर सकते है कि जबतक रक्तशुद्धि बनी रहती है अर्थात् विवाह आदि बातों में हिंदूधर्मानुसार जबतक रक्त शुद्धि रखने का प्रयत्नकिया जाता है तब तक कई वंशों के बाद भी जाति- समावेश हो सकता है। परंतु यदि रक्तशुद्धि न रही हो तो जाति समावेश नहीं हो सकता। (परंतु हिंदुओं में ऐसा भी एक पक्ष है जो जातिभेद नहीं मानता वह पक्ष इन्हें अवश्य आश्रय देगा।) यद्यपि जाति की दृढमूल कल्पनाओं को दूर करनेमें सफलता मिलनेके कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते तो भी प्रत्येक हिंदूको यह बात मान्य है कि सब हिंदुओं का दर्जा समान है और परमेश्वर के दरबार में उनमें कोई भी भेद भाव नहीं किया जाता। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में ऐसेही वचन प्रथित किए हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।साधुरेव
स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥क्षिप्रंभवति
धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति । कौन्तेय प्रति-
जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

इन सब प्रश्नों का संक्षेप रूप से यह उत्तर है। इस विषय में अब लोगों के सामने शास्त्राधार रखने का कार्य ही बच रहा है।

देवल-स्मृति और उसमें के आधार अलग देने की कोई आवश्यकता नहीं। कारण कि इस प्रस्तावना के साथ ही हम देवलस्मृति छपाकर प्रकाशित कर रहे हैं। हम पहिले ही निवेदन कर चुके हैं कि किसी भी पाप से प्रायश्चित्त के द्वारा छुटकारा हो सकता है। परंतु जिन सज्जनों के मन में यह प्रश्न उपस्थित हो कि इस विशेष पातक के लिए शास्त्रकारोंने कहाँ और कौन से प्रायश्चित्त बताए हैं उनके लिए शास्त्राधार उपलब्ध होने से हम यहाँ उध्दृत करते हैं। देवलस्मृति तो धर्म भ्रष्ट लोगों को पुनीत कर लेने के लिए ही निर्माण की गई है।

बलाद्दासीकृता ये तु म्लेच्छचांडालदस्युभिः।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथोच्छिष्टस्य भोजनम्।
खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम्।
तत्स्त्रीणां च तथा संगास्ताभिश्च सह भोजनम्॥

ये श्लोक देवल स्मृति में (१७-२२) पाए जाते है। परंतु मिताक्षरा के २८९ श्लोक की व्याख्या में भी "अथ परिग्रहा भोज्यभोजने प्रायश्चित्तं" प्रकरण में येही श्लोक दिए गए हैं और वहाँ कहा गया है कि ये आपस्तंब स्मृति के श्लोक हैं।

उसी प्रकार यमस्मृति में भी स्पष्ट रूप से यही अनुज्ञा दी गई है कि—

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥
प्रायश्चित्तं च दातव्यं तारतम्येन वा द्विजैः॥

आजकल जो देवलस्मृति उपलब्ध है उसमें पतित परावर्तन का एक ही प्रकरण पाया जाता है। परंतु संभव है कि पहिले इस में ऐसे और भी प्रकरण रहे हों। परंतु अब वे उपलब्ध नहीं है। आजकल की देवलस्मृति में मिलनेवाले श्लोक मिताक्षरोंमें कई जगह उध्दृत किए हुए हैं।

संलापः स्पर्शनिश्वाससहयानासनाशनात् ।
याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम्॥

उपलब्ध देवलस्मृति का यह ३३ वाँ श्लोक है और मिताक्षरा के २६१ वें श्लोक की व्याख्या में भी बृहस्पति के वचन सिद्ध करने के लिए यह दिया गया है।

उसी प्रकार—

याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।
कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥

देवल स्मृति का ३४ वाँ श्लोक है। यह भी उपरि निर्दिष्ट मिताक्षरा के प्रकरण में इसी संबंध से आया है और साथ ही स्मृति में के दूसरे श्लोक भी इसके सहाय्यार्थ उध्दृत किए गए हैं।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
भोजनासनशय्यादि कुर्वाण : सार्वका
लिकम् ॥

यह देवल स्मृति का ३५ वाँ श्लोक है। इसका भी मिताक्षरा में उसी जगह उल्लेख है।

मनु के ११। १५० श्लोक पर कुल्लुकभट्टने "याजनं योनि संबंधं" आदि श्लोक उध्दृत किया है।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ।

प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥
अनेकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेत् भ्राता पिता वान्यः सुहृज्जनः॥

विज्ञानेश्वर ने ये श्लोक अंगिरा और शंख के नाम पर दिए है । परंतु येही श्लोक देवल में जैसे के वैसे ही पाए जाते हैं । (३० । ३१)

इस प्रकार के और भी कई उल्लेख बताए जा सकते है । आशा है कि जो लोग देवल स्मृति की प्रामाणिकता के विषय में शंकित है उन की शंकाएँ इन सब बातों से नष्ट हो जावेंगी । देवलस्मृति का समर्थन करनेवाले बहुत से ग्रंथ हैं और कई बडे और सर्वमान्य ग्रंथोंमें देवलस्मृति के श्लोक उद्धृत किए गए हैं । इन सब बातों को जानते हुए भी देवलस्मृति की सत्यता पर विश्वास नकरना दीर्घशंकी मनुष्य का ही काम है ।

कुछ वर्ष हुए कि महाराजाधिराज काश्मीर नरेश रणवीर सिंहजीने हिंदुस्थान के बडे बडे पंडितों से " रणवीर-प्रायश्चित्त " नामक ग्रंथ बनवाकर प्रकाशित किया था । महामहोपाध्याय शिवदत्त शास्त्रीजी ने उस में का कुछ भाग " म्लेच्छीभूतानां शुद्धि व्यवस्था" के नाम से अलग प्रकाशित किया है । उसमें पतित परावर्तन का सप्रमाण मंडन किया गया है । वह भाग नीचे दिया जाता है:-

"तीर्थ प्रस्तावे विष्णु पुराणे–

" ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि भक्त्याऽभक्त्या पिवा कृतम् ; गंगास्नानं सर्वविधं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥ चांद्रायणसहस्रैस्तु यश्चरेत्कायशोधनम्। पिबेद्यश्चापि गंगाम्भःसमौ स्यातां न वासमौ॥२॥ भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् । गंगाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥ पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापप्रणाशनम् । देवताभ्यर्चनं पुंसामशेषाघविनाशनम् ॥४॥

भविष्ये-

" स्नानमात्रेण गंगायाः पापं दहति दुर्घटम् । दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेत्तो वदेदपि ॥ तस्यांह प्रवदे पापं ब्रह्मकोटिवधोद्भवम् । स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाकेषु जायते । आकल्पं नरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभ. ॥

इत्यादिवचनैः श्रीगंगातीर्थस्नानादेः सकलपाप नाशकता सिध्यति । एवं बृहन्नारदीये सर्वसाधारण प्रायश्चित्तानि प्रोक्तानि—

" प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः। तस्य पापानि नश्यन्ति अन्यथा पतितो भवेत् ॥ यस्तु रागादि निर्मुक्तो ह्यनुताप समन्वितः । सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरण तत्परः। महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः । सर्वैः प्रमुच्यते सद्यो यतो विष्णुरतं मनः ॥

" इत्यादिना विष्णुभक्तस्य नरमात्रस्य सकलपापनाशोऽभिहितः । इत्थं च बहुत्र प्रायश्चित्तविधायक वचनेषु "नर " इति सामान्य पदोपादानाद्बाह्यवर्णैर्म्लेच्छादीनामपि भगवद्भक्त्यधिकार सिद्धेः सर्वेषामपि स्वाधिकारयोग्यतानुसारेण वैदिकमार्गोन्मुखत्वं निराबाधं सिध्यति । इत्थं च त्रिपुरुषावधिनिश्रितसवर्णोत्पत्तीकानां कामतोऽकामतो वा म्लेच्छैः संसृष्टाना प्रायश्चित्ताचारणे न पुनः स्वस्ववर्णान्तर्गतत्वपूर्वक धर्मप्राप्ति । तदन्येषामपि ब्रात्यतमानां मूलतो म्लेच्छादीनां वा सत्यामिच्छायां नास्तिक्यत्यागेन भक्तिशास्त्ररामनामाद्युपदेशताधिकारः शूद्रकमलाकरोक्तसंस्कारोदपासिश्च सिध्यतीत्यत्र न कस्यचित्कटाक्षावसर इति सकल श्रुतिस्मृति पुराणेतिहासपर्यालोचनानिर्गलितो विमर्शो निष्पक्ष पातधीभिः सुधीभिर्निपुणं विचारणीय इति दिग् ।

विष्णुपुराण में लिखा है —

"ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक भक्तिसहित या भक्ति रहित अन्तःकरणसे कैसे भी गंगास्नान किया जावे तो सब प्रकार के पातक नष्ट हो जाते है। एक मनुष्य वह जिसने हजारों चान्द्रायणों से अपना शरीर शुद्ध किया हो और दूसरा वह जिसने केवल गंगाजल पिया हो दोनों ही पवित्रता में समान है। पवित्रता की दृष्टि से उनमें कोई भी भेद नहीं। जिस प्रकार गरुड को देखने से सब सर्पों का विष नष्ट होता है उसी प्रकार गंगादर्शन से मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है। तीर्थ स्थान की यात्रा करने से और देवताओं का पूजन करने से भी मनुष्य के सब पाप नष्ट होते हैं।

भविष्य पुराण में लिखा है —

जो मनुष्य कहे कि गंगास्नान से ब्रह्महत्या सरीखे पातकों का नाश कैसे हो सकता है उस मनुष्य को करोडों ब्रह्महत्या का पाप लगता है। और जो लोग कहते है कि यह केवल अर्थवाद है वे लोग कुम्भीपाक नरक में जाते हैं और एक कल्प तक नरक में रहकर अंत में गर्दभ जन्मको प्राप्त होते हैं। इन सब वचनों से सिद्ध होता है कि गंगा स्नान और तीर्थ गमन सबपापों को नष्ट करने वाले हैं। यही बात बृ-हन्नारदीय पुराण में भी दी गई है। जो मनुष्य भग-वद्भक्तिपरायण हो कर प्रायश्चित्त लेता है उसके सब पाप नष्ट होते है। ऐसा न करने से वह पतित होता है। जो मनुष्य आसक्ति आदि छोडकर सब प्राणियों पर दया करते हुए विष्णु का स्मरण करता है उसे बडे बडे पातकों से और उपपातकों से छुटकारा मिलता है। कारण उसका मन विष्णु की ओर लगा रहता है।

इन वचनों पर से स्पष्ट मालूम होता है कि किसी भी विष्णुभक्त मनुष्य के सब पापों का नाश होता है।"

प्रायश्चित्त विषयक ऊपर के विवेचन से बताया गया है कि मनुष्य मात्र को प्रायश्चित्त लेने का और भगवद्भक्ति का अधिकार है। इस लिये सब मनुष्यों को अपने अपने अधिकार और योग्यतानुरूप वैदिक मार्ग की ओर प्रवृत्त होने में कोई आपत्ति नहीं। इस से सिद्ध होता है कि जिन स्वधर्मभ्रष्ट लोगों की उत्पत्ति अपनी अपनी सवर्ण जातियों में हुई हो वे तीन पीढियों तक भी शुद्ध होकर अपने अपने वर्ण में लौट सकते हैं। जो इस से भी अधिक पतित हों वे या जो यथार्थ में ही म्लेच्छ हों वे भी यदि उन-की वैसी इच्छा हो तो अपनी नास्तिकता छोडकर भक्तिशास्त्र के और राम आदि मंत्र के अधिकारी बन सकते है और "शूद्रकमलाकर" ग्रंथ की बिधिसे इनके संस्कार भी किए जा सकते हैं। यह बात सब श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासों में लिखी है। सब विद्वान् इस का पक्षपात रहित होकर विचार करें।

इसके सिवाय विद्यारण्य की सुप्रसिद्ध पंचदशी में भी स्पष्ट उल्लेख है कि धर्मांतर किए हुए मनुष्यको स्वधर्म में वापिस ले सकते हैं।

गृहीतो ब्राह्मणो म्लेच्छैः प्रायश्चित्तं चरन्पुनः।
म्लेच्छैः संकीर्यते नैव तथा भासः शरीरकैः।।

भक्ति लीलामृत में (मराठी। अ० ४४) उल्लेख है कि इस आधार पर ही बहिरंभट्ट को पैठन के ब्राह्मणों ने शुद्ध कर लिया था। यह तो सर्व विदित है कि शिवाजी महाराज के समय में बजाजी निं-बालकर शुद्धि के द्वारा हिंदू-धर्म में लिया गया था। उसी प्रकार के बहुत से निर्णय पत्र और कागजादि

कऱ्हाड मे और अन्य दूसरे स्थानों में उपलब्ध हुए है। (भारत इतिहास संशोधक मंडल तृतीय संमेलन वृत्त पृष्ठ ८१से८७ तक देखिए) इतना ही नहीं तो ज्योतिर्मठ के और कोल्हापूर के शंकराचार्यों के आज्ञापत्र और शुद्धि करण के दूसरे प्रमाण भी मिले है। प्रो० द० वा० पोतदार ने उपरोक्त तृतीय सम्मेलन-वृत्तांत में इस विषयकी बहुत सी बातें दीं हैं। कै० न्या० रानडे ने अपनी मराठों संबंधी अंग्रेजी पुस्तक में पतित परावर्तन के चार उदाहरण दिए हैं। न्या. तेलंग ने अपनी "Gleanings from the maratha Chronicle"पुस्तक में २६६-६७ ६८-८१ पृष्ठों पर इस संबंध में कई ऐतिहासिक उदाहरण दिए हैं।

संभाजी महाराज के पंडितराव का लिखा हुआ एक आज्ञापत्र मिला है जिससे मालूम होता है कि पांच वर्षों तक मुगलों के साथ रहने पर भी गंगाधर रघुनाथ कुलकर्णी, मिताक्षरा आदि निबंध ग्रंथों के आधार से शुद्ध कर लिया गया। पेशवाओंके रोज नामों में इस प्रकार शुद्ध कर लेने के बहुत से उल्लेख है।

इतिहास शोधक म० सरदेसाईने अपनी 'ब्रिटिश रियासत' पुस्तक में लिखा है कि वसई के पास जो तीर्थस्थान है उसके आसपास के ब्राह्मण पोर्चुगीज लोगोंके द्वारा ईसाई बनाए हुए लोगों को, शुद्ध कर लेने का कार्य खुले तौर पर किया करते थे।

"जो हिंदू भ्रष्ट होकर ईसाई बन गए थे उन्हें अपने स्वधर्म में लेने के अनेक प्रयत्न उस काल के ब्राह्मणो द्वारा किए गए है। वे भ्रष्ट लोगों को अपने सनातन धर्म में आने का केवल उपदेश ही नहीं करते थे, वरन् जन्माष्टमी सरीखे बडे बडे मेलों के समय उनसे समुद्रस्नान या गंगास्नान कराकर उन्हें शुद्ध किया करते थे। वे लोगों को इस बात का विश्वास करा देते थे कि ऐसे पवित्र अवसर पर गंगा-स्नान करनेसे जैसे सब पाप का क्षालन होता है वैसे ईसाई बने रहने से कदापि न होगा। ब्राह्मणो की इन चालों को देखकर पादरी लोग खूब जलते और उनके प्रयत्न रोकने के लिये वे थाना, वसई, बंबई आदि जगहों में खाडियों और समुद्रके किनारे खंबो पर क्रास लगा रखते थे। ऐसी हालत में जहाँ क्रास न लगे हो वहाँ जाकर ब्राह्मण अपना शुद्धि कार्य किया करते थे। अंत में ईसाइयों से तंग आकर ब्राह्मणों ने,वसई के निकट के जंगल में एक तलाव ढूँढ कर वहां छिप छिपकर अपना शुद्धिकार्य करना शुरूकर दिया। परंतु कुछ दिनों में उस स्थान का भी पता ईसाईयों को लगा और पोर्चुगीज सिपाहियों ने उन ब्राह्मणों पर हमला कर उन्हें भगा दिया। उस समय एक बैरागी जो ईसाई से हिंदू बना लिया गया था उनकी फौज के सामने अकेला निडर होकर खडा रहा। इस से वे पादरी इतने चिड गए कि उन्हों ने उस जगह को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और गायें मारकर उनका मांस और रक्त उस तालाव में तथा आसपास की जगह में सींच दिया। इस प्रकार उन्होंने वह स्थान अपवित्र बना डाला (अगस्त १५६४ पृष्ठ १८३ - १८४)

इसको और इस प्रकार के अन्य उदाहरणों को देखकर किसी भी मनुष्य को संदेह नहीं हो सकता कि पतित परावर्तन सशास्त्र है।

इन सब बातों का विचार करते हुए कहना पडता है कि जिस मनुष्य ने धर्मांतर किया हो वह केवल शुद्ध ही नहीं हो सकता तो यदि रक्तशुद्धि धनी हो तो उसे अपनी जाति में समाविष्ट करलेने में भी कोई आपत्ति नहीं। देवलस्मृति के अनुसार

" दशादि विंशति" वीस साल तक मनुष्य स्वधर्म में लिया जा सकता है। पंडितप्रवर श्रीधर शास्त्री पाठक वगैरह महानुभावोंका कहना है कि 'शत-पत्रन्याय' से देवलोक्ति का अर्थ "अनेक साल" भी ले सकते हैं। मराठों के इतिहास में भी ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ बीस वर्ष के बाद भी मनुष्य शुद्ध किए गए थे।

यदि प्रायश्चित्त के बारे में पूँछा जाय तो यही कह सकते हैं कि अज्ञान वश, फुसलाकर, या जबर-दस्ती भ्रष्ट किये हुये लोग अपने यहां होने से और उनकी शुद्धि के कार्य की सर्वत्र आवश्यकता होनेसे उन्हें पादकृच्छ्र से तीन कृछ्र तक जो प्रायश्चित्त योग्य हो दिया जावे। इस के लिये प्रमाण ऊपर ही दे चुके हैं।

कृछ्र का अर्थ सात दिन तक भिन्न भिन्न रीति से उपवास करना या दण्ड के रूप से धन दान करना है।

कृछ्र में कम से कम एक चवन्नी तो भी दान कर पंचगव्य लेकर पवित्रता के लिए आवश्यक किसी मंत्र का जप करना चाहिए। संक्षेप में यह विधि ऐसी है और इसे कोई भी बड़ी सुविधा से कर सकता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यमें से कोई उपनीत भ्रष्ट हो और यदि रक्तशुद्धि का कोई प्रश्न न हो तो उसका मेखलादण्डादिवर्जित पुनरुपयन कर उसे मंत्रोपदेश करना चाहिये। बाकी सब विधि उपरोक्त प्रकार से ही की जावे। सर्व प्रायश्चित्त आदि केवल धर्मांतर के द्वारा सचित पाप की निष्कृति के लिये ही नहीं किए जाते। परंतु यह बात सर्वसामान्य है।

चांद्रायण आदि के समान जो प्रायश्चित्त हैं वे व्यवहार में कभी भी प्रत्यक्ष नहीं किये जाते। सब लोग इस प्रायश्चित्त के बदले द्रव्यदान कर मुक्त होते हैं।

उसके लिए प्रमाण भी है। देखिए-

प्राजापत्यक्रियाशक्तौ धेनुं दद्याद्द्विचक्षणः।
धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यमसंशयम्।
मूल्यार्धमपि निष्कं वा तदर्धं वा प्रदीयते॥
कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उदवासस्तथैव चाम्भुत्सवरे
धेनुप्रदानं विप्राय सममेतच्चतुष्टयम्॥ पराशरः।
प्राजापत्ये च गामेकां दद्यात्सान्तपने द्वयम्।
पराकतप्तातिकृच्छ्रे तिस्रास्तिस्रास्तु गास्तथा॥
चतुर्विंशतिमते॥

इन तीनों वचनों में कहा गया है कि प्राजापत्य आदि प्रायश्चित्तों के बदले, गाय, गाय का मूल्य, निष्क (एक सिक्का) रुपया, आठ आने, या चार आने, कुछभी दान किया जावे। हरेक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसका आचरण करे। कारण शास्त्रकारों की भी आज्ञा है कि देश काल और शक्ति का विचार अवश्य करना चाहिए।

सिवा इसके सब स्मृतिकारों का इस विषय में एक मत है कि ये प्रायश्चित्त सब पापों का हरण करते हैं। देखिए :—

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः।
मनु ११। २५
चान्द्रायणं यावकश्च तुला पुरुष एव च।
गवा चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्॥ हारित।
यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महापातकनाशनम्।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शोधयेन्नात्र संशयः॥उशनाम्
यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराणि च कृच्छ्राति
कृच्छ्रचान्द्रैयैः शोध्यन्ते मनुरब्रवीत्। षट्त्रिंशन्मत
दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि।
कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥ उशना
दुरितमुपपापकं, दुरिष्टं पातकमिति विज्ञानेश्वरः।

इन सब वचनों से ज्ञात होगा कि कृछ्र चांद्राय-

णादि प्रायश्चित्त सब पापों से मुक्ति दे सकते हैं।

यहाँ तक, भ्रष्ट लोगों को शुद्ध कर लेने के विषय में हमने अपने विचार संकलित रूप में प्रकट किए हैं। हम आशा करते हैं कि इनसे शुद्धिकार्य में लगे हुए लोगोंका उत्साह बढकर वे अपना काम अधिक स्फूर्ति से करेंगे और जो लोग ऐसी कुशंकाओं के कारण इस कार्य से अलग हैं उनकी शंकाएँ नष्ट होकर वे भी इस कार्य में हाथ बटावेंगे। इस शुद्धिकरण के कार्य का महत्त्व किसी भी विचारशील मनुष्यको समझाने की हमें कुछभी आवश्यकता नहीं दीख पडती। आज तक धारण की हुई इस उपेक्षावृत्ति का घातक ही हिंदुस्थानको सात करोड मुसलमान और एक करोड ईसाइयों के रूप में सता रहा है। आगे भी यदि हिंदूसमाज की ऐसे ही बने रहने की इच्छा हो तो उसका भवितव्य लिखने के लिए किसी ज्योतिषी की कुछ आवश्यकता नहीं। प्रायश्चित्त लेकर हिंदूसमाज में लौटने के उद्देश से आज हजारों लोग हिंदूसमाज का दरवाजा खटखटा रहे हैं। क्या हिंदू समाज उनकी उपेक्षा ही करेगा ?

आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः।
जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते यान्ति समतां तु तैः ॥

अंगिरस मुनि कहते हैं कि प्रायश्चित्त की याचना करने वाले लोगों को जो जानते हुए भी प्रायश्चित्त नहीं देते वे उन्हीं के समान बन जाते हैं।

प्रायश्चित्तके विषय में भी मनुने कहा है —

कृत्वा पापं तु संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥
मनु ११। २३०

पाप करने के बाद जिसे पश्चात्ताप होता है वह उस पापसे मुक्त होता है। "अब मैं" ऐसा न करूंगा इस भावना से वह शुद्ध होता है।

कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित्।
(मनु. ११। १९०)

प्रायश्चित्त लिए हुए लोगों की किसी भी कारण से कभी निन्दा या अनादर न करना चाहिए।

इन सब वचनों से शास्त्रकारों की आज्ञाओंको और भगवान् श्रीकृष्ण के संदेश का स्मरण कर और भारत माताकी पुकार सुनकर यदि प्रत्येक हिंदू इस कार्य में सहाय्य करेगा तो अवश्य ही परमेश्वर दयालु होकर भारतरूपी गजेंद्र को मुक्त करेगा।

दीर्घश्वासका महत्त्व।
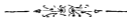
भोजन के बिना आदमी सप्ताहों तक निर्वाह कर सकता है। जलके बिना घटों तक वह रह सकता है, किन्तु श्वास के बिना एक क्षण भी प्राणी का जीवन चल नहीं सकता। शरीर के रुधिर की शुद्धी करनेका काम फेफडों का है। ये फेफडे हमारी बहुत ही सुन्दर सेवा करते हैं। हमारे फेफडों द्वारा दिन भर में हमारा शरीर इतना बाष्प निकाल देता है कि जिस से बारह हाथी मर जाय। प्रति

क्षण हमारे शरीर के पुटों का क्षय होता है। शरीर रूपी शहर में प्रतिक्षण इन पुटरूपी मुरदों का ढेर लग जाता है। किन्तु फेफडों का काम इस बात में बडा हि उपयोगी है। वे बाहर की शुद्ध हवा को इस शहर में ले जाकर प्रत्येक श्वास प्रश्वास द्वारा कार्बोनिक गेस नामक अनुपयोगी तत्त्व को लेकर अपने साथ रक्खे हुये प्राणवायु नामक उपयोगी तत्त्व को उन पुटों को देकर पुनः शरीर में भ्रमण करने के लिये भेज देते है। इस प्रकार प्रतिक्षण हमारे शरीर में रचनात्मक और खंडनात्मक क्रियाएं होती रहती है। श्वास प्रश्वास के स्वाभाविक सदैव होते हुये भी हमें बहुत बार शिरोवेदना अशक्ति आदिका कुछ अनुभव प्रतीत होने लगता है। क्यों कि हम श्वास प्रश्वास तो करते हैं किन्तु दीर्घ श्वास प्रश्वास नहीं करते है। हमारे फुप्फुसों की १४०० चौदहसौ फीट जगह का बहुत ही थोडा भाग हम श्वास प्रश्वास के उपयोग में लेते है। अतः उपयोग न किया हुआ शेष भाग रोगी बन जाना है, निष्क्रिय बन जाता है, इस लिये हमारे में से बहुत सारे विशाल छातीबाले तथा लाल बुझक्कड जैसे दीखते हुये भी न्यूमोनिया तथा क्षय से मरते दीख पड रहे है। अतः बडे शोक के साथ कहना पडता है कि वर्तमान में सभ्य गिनी जाने वाली प्रजा निर्बल फुप्पुसवाली होती चली जा रही है। बहुत सारे आदमी तो केवल जीने के लिये ही थोडा, श्वासोच्छ्वास ले रहे है। उन्हे जरासा परिश्रम लेने से श्वास भर आता है और वे थक जाते हैं। और सर्दी या जुखामके बलिदान बन जाते है। वर्तमान सभ्यताका अपना वेग इतना तो बढा है कि इस के साथ साथ रहने के लिये असाधारण फेफडों का तथा दीर्घ श्वास प्रश्वास की शक्ति का होना बडा आवश्यक है किन्तु वर्तमान सभ्यता मे गर्क होनेवाली प्रजाओंमें यह बात प्रतीत नहीं होती। गोरीला नामक वानर को उसकी जंगली हालत में से उठा लेकर वर्तमान शहरो में रखने के प्रयोग किये गये तब पता चला कि ये क्षय आदि बीमारियों से मर गये। इसी तरह हिमाच्छादित ध्रुव प्रदेश के निवासी का भी हाल हुआ। कतिपय वर्षोंपर अमरिका मे कितने एस्किमा जाति के स्त्री पुरुषों को लाकर रक्खा गया। उन में से एक के सिवाय अन्य सर्व क्षय और न्यूमोनियासे मर गये। इसका क्या कारण ? हमारा जीवन वैभवी बन रहा है जीवनकी सादगी मे रही हुई उपयोगिता को हम देख नहीं सकते। यदि आज हमें कोई डाक्टर कर्ण नलिका से देखकर कहदे कि तुह्मारे फेफडे अच्छे हैं तो हम मनमाने आहार विहार करने लग जाते हैं। किन्तु हमें यह जानना चाहिये कि अच्छे फेफडोंको अच्छा रखने के लिये सतत प्रयत्न और परवाह की जरूरत है और मुखद्वारा श्वास प्रश्वास न करते हुये नासिका द्वारा ही करना चाहिये। (प्रभात)

एक अद्भुत कूवाँ।

औंधसे करीब सात कोस की दूरीपर चितळी (मायणी)नामक एक ग्राम है। सात आठ मास के पूर्व एक गुजरने अपनी खेती के लिये एक कूवां खोदा। कूवेमें पानी बहुत नहीं लगा, परंतु जो थोडासा आता था वह पीनेसे दस्त लग जाते थे। इस लिये उस गुजरने समझा कि यह कूवा खराब है।

कई दिन पश्चात् कई पथिक मार्गसे जाते थे उन्होंने उस कूवेका पानी पीया उनको भी दस्त लगे, परंतु आश्चर्य यह हुआ कि उनमेंसे एक दमेका रोगी था, उसका दमा बिलकुल हटगया। इससे पता लगा कि इस पानीमें कुछ विशेष औषधिगुण है।

थोडेही दिनोंमें यह आश्चर्यकारक वृत्त सब आसपासके ग्रामोंमें फैलगया और सैकडों रोगी वहा गये और प्रायः सबको आरोग्य मिला। कई बीमार दमेके थे, कई पेट दर्दके थे और कई अन्यान्य बीमारियोंके थे। महारोग जिसको अंग्रेजीमें लेप्रसी कहते है, कुष्टरोग आदीभी इस पानीके पीनेसे आरोग्यको प्राप्त हुए।

इस समय करीब दो तीन सौ महारोगी कुष्ट रोगी उस स्थानपर है और प्रायः सभी आरोग्य प्राप्त कर रहे है।

प्रतिदिन दोचार सौ मनुष्य उस ग्राममें जाते है और हर एक आदमी को दो पैसे देने पर एक लोटा पानी देने का इंतजाम वहां किया गया है। इस समय तक सहस्रों मनुष्य इस जलका अनुभव करचुके हैं और प्रायः सभी को कुछ न कुछ लाभ प्राप्त हुआ है।

जो मनुष्य आना चाहते है वे पूनासे रहिमतपूर स्टेशनपर उतरें और वहासे मोटारद्वारा उस स्थानपर पहुंच सकते हैं।

विशेषतः हम चिकित्सक डाक्टरों और वैद्योंसे प्रार्थना करते है कि वे इस स्थानको अवश्य देखें, उस जल का पृथक्करण करे और देखें कि उस जलमे कौनसे द्रव्य हैं और उनसे किन रोगोंकी निवृत्ति होना संभव है।

इस समय भेडचाल चल रही है और कोई ज्ञानी पुरुष वहां नहीं है। इसलिये पृथक्करण कर सकनेवाला डाक्टर वहा जाये और उस ग्रामके सभी कूओं के जलका पृथक्करण करके देखे कि किस कूवे के जलमें कौनसे गुण है तो रोगियो केलिये बडा आराम हो सकता है। हम सुनते है कि उस ग्रामके अन्य कूवोंमें भी इसी प्रकारकी शक्ति है। और वहां के नालेके पानीमें भी ऐसी ही शक्ति कुछ अंशमे है।

दूर रह कर पानी मगवानेसे कार्य नहीं चलेगा क्यो कि हमने यह भी सुना है कि आज कल दो पैसे लोटाभर पानी के लिये लेनेके लालचसे उसमें दूसरा पानी भी मिला देने लगे हैं और इस कारण प्रारभमें जो गुण लोगोंने अनुभव किया था वह सबको इस समय प्राप्त नहीं होता है। इसलिये विद्वान डाक्टर स्वयं वहां जांय और देखें कि वास्तवमें ठीक ठीक क्या है।

इस समयतक पशुयाग मीमांसा पुस्तक मुद्रणके लिये जो सहायता हमारे पास प्राप्त हो चुकी है वह यह है—

म० सोहनलालजी	२) रु.
ला० राजबहादुर वर्माजी	५)
म० चौथी सिंहजी	१)
पं० रामरतनजी	१)
म० मन्नालालजी	१)
" बुधसिंहजी	॥)
" घीसालालजी	॥)
" दीवान सिंहजी	२)
	१३

पूर्वोकमें प्रकाशित १३०४॥≡

सर्वयोग १३१७॥≡

शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिमनिश्चय इस अंकमें प्रसिद्ध करनेकी हमारी हार्दिक इच्छा थी। जिस समय श्री-पं० धुंडिराज दीक्षित जी यहां आये थे उस समय हमने उनसे भी यही प्रार्थना की थी। और यहांसे उनके जानेके पश्चात् एक अंतिम पत्र भी उनके नाम हमने भेजा था। उसका उत्तर अभीतक आना चाहिये था परंतु अभीतक आया नहीं। अब हमें आशा है कि हम अगले वैदिक-धर्म में शास्त्रार्थ विषयक आवश्यक पत्र मुद्रित कर सकेंगे। हमारी यह इच्छा थी कि यह शास्त्रार्थ शीघ्रही प्रारंभ होकर समाप्त हो जाता, परंतु अब ऐसी कुछ अवस्था बन गई है कि उसके प्रारंभ होनेका समयही निश्चित नहीं होता है। धार्मिक लोगोंके शास्त्राभिमान का यह भी एक नमूनाही है। हमारा इसमें एकपक्ष होनेके कारण हम इस विषयमें इसीसमय प्रतिपक्षके विषयमें अधिक नहीं लिख सकते, क्योंकि वैसा करना इस समय उचित नहीं है। परंतु यदि अगले मासतक हमारे पास प्रतिपक्षसे निश्चयात्मक कुछ भी उत्तर नहीं आया तो हम खुले दिलसे इस विषयको जनताके सन्मुख रखनेमें स्वतंत्र होंगे।

वैदिक धर्मका अगला वर्ष।

इसके पश्चात् और दो अंक मुद्रित होनेपर यह वैदिकधर्म मासिकका षष्ठ वर्ष समाप्त होगा। तथा क्रमांक ७३ से इस मासिकके लिये सप्तम वर्ष प्रारंभ होगा। इस सप्तम वर्षसे हम इस मासिकमें विशेष परिवर्तन करना चाहते है।

(१) इस समय इसकी पृष्ठ संख्या ३२ है जो अगले वर्ष से ४० चालीस की जायगी।

(२) वार्षिक मूल्य म० आ० से ३ ||=) है और वी० पी० से ३ |||=) रु० है, वह वार्षिक मूल्य ४) रु० होगा। अर्थात् नाम मात्र मूल्यको बढाकर प्रतिमास पृष्ठसंख्या आठ बढा दी जायगी। इससे ग्राहकोंको बडा लाभ होगा।

(३) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगों मे मुद्रित करके वैदिक धर्म मासिक के साथ दिया जायगा। इस का नमूना पाठकों के पास पहुंच चुका है। ऐसे वेदवाक्य घर में दिवारों पर लगाने योग्य है। ये वाक्य पढकर मनके अंदर दिव्य तेज का संचार होता है।

(४) प्रतिमास कमसे कम आठ पृष्ठ वेदमंत्रों के स्वाध्याय के लिये अवश्य दिये जांयगे। पहिले यह स्वाध्याय केलिये मंत्र दिये जाते थे, परंतु पाठकों के द्वारा अनेकवार सूचनाएं आनेके कारणउस सिलसिलेको बंद करना पडा।

(५) पाठकोंका कहना यह था कि वे संस्कृत नहीं जानते इसलिये वेद स्वाध्याय के पृष्ठोंसे उन को कोई लाभ नहीं होता। इस कठिनता को दूर करनेके लिये ही-

संस्कृत पाठ माला।

संस्कृत पाठ माला शुरू की गई। चोवीस भागोंमें इसकी पढाई समाप्त होगी। और जो ग्राहक इन चोवीस भागोंको एकवार पढेंगे उनके लिये संस्कृत की कोई कठिनता नहीं रहेगी। पाठकों की इस सुविधाके लिये ही अन्य कार्य छोडकर यह संस्कृत पाठमाला बनायी जा रही है और पाठकोंने इसको अच्छीप्रकार अपनाया भी है। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि अब प्रायः सभी पाठक वैदिक-धर्म में प्रतिमास वेदका स्वाध्याय पढकर अधिक लाभ उठा सकेंगे और हम भी अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकेंगे।

आशा है कि पाठक इस वैदिक धर्म मासिक के आगामी वर्ष मे होने वाले परिवर्तन के साथ पूर्ण सहानुभूति रखेंगे। और अपने इष्ट मित्रोंको ग्राहक बना कर हमारा उत्साह बढायेंगे।

(१)

(ले०-श्री. योगेन्द्रनाथ तिवारी, गुमला, रांची) आपके आसन नामक पुस्तकको पढ उसके साधनों को स्वयं अभ्यास कर तथा अपने मित्रोंसे अभ्यास करा अत्यंत लाभ उठाया है। विशेष कर आपके शीर्षासन से। मसुडा फूलने और पकनेका रोगनिवारण के लिये तो यह अनन्य दवा और प्राकृतिक साधन है। दांत की कमजोरी और उससे रक्त प्रवाहको थोडे दिनोंके अभ्यास से सदा के लिये दूर कर देता है।

(२)

(ले०- श्री. भक्तरामजी, बी. ए. पलवल.)

पिछले महिने मेरे लडकेको ज्वर होगया था। जिसमें वह २१ दिन पीडित रहा। उसकी माता यहां नहीं थी इसलिये मुझे ही उसकी सेवा शुश्रूषा करनी पडी। एक दिन कोई १०।१२ दिन पश्चात् मुझे सिर दर्द होगया। मै उसके पाससे उठ आता, खुले सहनमें घूमता, प्राणायाम भी करता, सिरका व्यायामभी करता, पर सिर पीडा न गई। ऐसा प्रतीत होता था कि सिर फट जाता है। अकस्मात् मुझे शीर्षासन का ख्याल आगया। मेरे विस्मय का ठिकाणा न रहा जब की पाच मिनिट के शीर्षासनके पीछे सिर दर्दका नाम तक न रहा।

ज्वर दूर करनेको आजमाने के लिये हौसला न हुआ पर सिर पीडा दूर होनेका चमत्कार तो अनुभव में आगया है।

श्रीमंत बाळासाहेब पंत बी. ए. प्रतिनिधि सं. औंधका

स्वाध्याय मंडल में दर्शन।

औंध नगरमें सन १९१८ में स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई, तबसे हमारी हार्दिक इच्छा थी कि श्रीमान औंध नरेश इस कार्य का अवलोकन करें , यह इच्छा गत ता० ३० अगस्त के दिन सफल हुई। ठीक निश्चित समयपर साढे चार बजे मध्यानोत्तर श्रीमान महाराजा साहेब अपने सब ओहदेदारोंके समेत स्वाध्याय मंडलमें पधारे। भारत मुद्रणालय के सब यंत्रोंका निरीक्षण उन्होने प्रथम किया। वेद छपाईके लिये जो बडा जर्मन यंत्र लाया था उसका निरीक्षण करनेके समय का चित्र इसी अंकमें अन्यत्र दियाही

है। इस समय तक छोटे छोटे ट्रेडलपर ही छपाई हो रही थी, इस कारण समयपर छपाई होना असंभव हो गया था। इस हेतु एक अच्छा जर्मन यंत्र मंगवाया गया है, जो चित्र में दिखाई देता है। यह यंत्र ऐसा है कि इस पर बीस तीस का कागज छपता है और रंगदार छपाई भी होती है। मुंबई के प्रेसों में छपाई करके वेदके सस्ते पुस्तक बिकना असंभव है, इस कारण यह यंत्र मंगवानी पडी।

इसका निरीक्षण करके तथा अन्य यंत्रोंका कार्य देखकर स्वाध्याय मंडल के कार्यकर्ताओंके कार्यका निरीक्षण किया। इस प्रकार संपूर्ण कार्य का अवलोकन करनेके पश्चात् अपने सब ओहदेदारोंके साथ तथा प्रतिष्ठित नागरिकोंके साथ स्वाध्याय मंडलके सभास्थान मे श्री० महाराजा साहेब पधारे। वहां सब उपस्थित सज्जन अपने अपने स्थानपर विराजनेके पश्चात् स्वाध्याय मंडलके संचालक श्री० श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीने गत सात वर्षोंके कार्यका संक्षिप्त वृत्त सुनाया, जिसका तात्पर्य यह है —

सात वर्षोंके कार्यका संक्षिप्त वृत्त।

" श्रीमन् महाराजा साहेब और उपस्थित सज्जनों! आज सात वर्ष पूर्व मैं यहां आया और स्वाध्याय मंडल का कार्य प्रारंभ किया। वेदोंका पढना और पढाना अपने संपूर्ण धर्म और माननीय ग्रंथोंका स्वाध्याय करना यह स्वाध्याय मंडल का कार्य है। इस समय स्वधर्मके ग्रंथोंका पठन पाठन पुनः प्राचीन परिपाठी के अनुसार करना अत्यंत आवश्यक है और वही कार्य यथाशक्ति करने का हमारा प्रयत्न है।

" सात वर्षोंमें जो कार्य हुआ है उसका साधारण ब्यौरा यह है—

" इस समयतक करीब सवालाख रुपयोंका व्यय स्वाध्याय मंडलके कार्यमें हुआ है। इसमें करीब आधी रकम वैदिक पुस्तकों की छपाई के लिये व्यय हुई और शेष स्थानिक स्थिर और अस्थिर कार्य के लिये लगी। मकान और यंत्र स्थिर कार्य समझिये और अन्य वेतनादि अस्थिर कार्य समझिये।

" इस समय तक गत सात वर्षोंमे करीब ग्यारह हजार रु. दान के आगये और शेष पुस्तक विक्रीसे जमा हुए। मेरा धन जो लाहौर की मेरी दुकान विक्रित करके प्राप्त हुआ था वह सबका सब इसीमें लग चुका है।

" गत दो वर्षोंसे यहां मुद्रणालय शुरू किया गया इससे पूर्व मुंबईमें सब पुस्तकें मुद्रित होती थीं। मुंबई का मुद्रण अच्छा होता है परंतु बहुतही महंगा पडता है। मुंबईमें जबतक मुद्रण होता था उस समय तक वैदिक धर्म मासिक की पृष्ठसंख्या बढाना करीब असंभव था। अपना मुद्रणालय होनेसे यह संभव हुआ है। वेदोंके सस्ते पुस्तक छापकर प्रसिद्ध करनेकी जो हमारी हार्दिक इच्छा है वह अब होना संभव दीखती है। तथापि प्रतिदिन कार्य की व्याप्तिके साथ कर्जा का बोझभी बडाभारी उठाना पडता है। प्रथम वर्ष जो कर्जा हजार डेढ हजार रु० था वह अब पंद्रह हजार सेभी अधिक होगया है। और अब यह कर्जा उठाना हमारी शक्तिसे बाहर हुआ है।

"धार्मिक पुस्तकोंके स्थानपर यदि हम उपन्यासादि पुस्तक प्रकाशित करते तो इतना बोझा हमें उठाना न पडता परंतु वैसा करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

" इस समय हमारे सामने वेदका कार्य पडा है। संपूर्ण मूल वेद शुद्ध पुस्तक रूपसे प्रसिद्ध करनेका कार्य प्रथम करना है। यह कार्य प्रारंभ हुआ है। वेद समन्वय का कार्य भी जारी है। यजुर्वेद के

संपूर्ण अध्यायोंका मुद्रण करना है। ये संपूर्ण कार्य इतने अधिक व्ययके है कि इनको किस प्रकार निभाया जा सकता है यह हमारे समझमें ही नहीं आसकता। यजुर्वेदके समन्वयका लेखन प्रारंभ हुआ है। यह ग्रंथ करीब दो हजार पृष्ठोंका बनेगा इसका मुद्रण भी बडा खर्चेका कार्य है।

"मेरा पूर्ण विश्वास है कि जिस दयामय परमात्माने मेरी प्रेरणा इस कार्यमें लगा दी और मेरे द्वारा इतना कार्य करवाया वही आगेकाभी कार्य करायेगा ही। तथा मै उन धार्मिक प्रवृत्तिवाले सज्जनों का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि जिन्होंने मुक्तहस्तसे इस कार्यमें आर्थिक सहायता की है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमें भी वेही सज्जन इस कार्य की पूर्णता करनेके लिये अपना सहायक हस्त इस वैदिक अन्वेषणकी सहायतार्थ अवश्य भेजेंगे।"

इस आशय का वृत्तकथन होनेके पश्चात् स्वाध्यायमंडलके कार्यकर्ताओंको योग्य पारितोषिक श्री. महाराजा साहेब के द्वारा दिये गये और तत्पश्चात् श्री. महाराजा साहेब का भाषण हुआ, आपने जो वक्तृत्वपूर्ण और उत्साहवर्धक भाषण किया उसका तात्पर्य यह है—

"सभ्य लोगो! जहां सत्यनिष्ठा और तत्त्वकी प्रीति है वहां यश अवश्य मिलता है। जो धार्मिक संस्थाएं चलती नहीं उनके बीचमें किसी न किसी रूप से धार्मिक भावोंका अभावही होता है। स्वाध्याय मंडलका जो सप्त वार्षिक वृत्त हमने सुना वह बडा समाधान कारक है। इस समय तक सवालाख रु. का व्यय करने की जो शक्ति इस संस्थामे आगई है उस का कारण इस संस्था की जडमे शुद्ध धर्म भाव है और जबतक यह धर्मभाव रहेगा तबतक इस संस्थाकी उन्नति ही होती रहेगी। धार्मिक संस्थाएं धनाभावसे डूबती नहीं, प्रत्युत धर्मभाव के अभाव के कारण डूबती है। यद्यपि संचालक जीके ऊपर इस समय कर्जोंका बोझा बहुत बढ गया है, तथापि और दोचार वर्षों तक इसी प्रकार ये कार्य करेंगे तो निःसंदेह इन का बोझा हलका हो जायगा। यह इनका कार्य देख कर हमे बडी प्रसन्नता होगई है और जिस धर्म भावना से यहां कार्य हो रहा है वह देखकर हमें निश्चय होता है कि इनका उद्देश अवश्य ही सफल होगा।"

इस प्रकार श्री० महाराजा साहेब का भाषण होनेके पश्चात् पान सुपारी इतर गुलाब और पुष्पहार अर्पण करने के पश्चात् सबके धन्यवाद गानेके समय मंत्री महोदयजीने कहा कि—

"श्री० महाराजा साहेब तथा सब ओहदेदार और औंधके प्रतिष्ठित नागरिक यहां संमिलित होकर उन्हो ने हमारा जो उत्साह बढाया है, उसके लिये हम आप सबका धन्यवाद करते है। विशेषत. श्री. महाराजा साहेबका हम सब स्वाध्यायमंडल के कार्यकर्तागण धन्य वाद करते है क्यों कि उन्होने यहा आवश्यक स्थान। दि देकर यहाका हमारा कार्य बडा सुगम किया और अब पाच हजार रु० का दान यजुर्वेदके मुद्रण करने के लिये दिया है। और शर्त यह लगाई है कि संपूर्ण पुस्तकमें एक भी अशुद्धि न रहे। इस शर्तको स्वीकृत करके हमने उक्त दानका स्वीकार किया है और यह कार्य प्रारंभ भी किया है। इस दान से यह बात सिद्ध हुई है कि श्री० महाराजा साहब की सहानुभूति इस वैदिक खोजके साथ पूर्ण है और यह देखकर हमारा उत्साह दुगणा होगया है। हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें भी हमारे से इस से भी अधिक कार्य हो जायगे और इस कार्यद्वारा धर्मजागृति होने मे भी सुगमता होगी।"

अंतमें सब उपस्थित सज्जनोंका पुनः धन्यवाद करने के पश्चात् यह कार्यवाही समाप्त होगई।

प्राचीन भारतकी जनसंख्या।

पुरातत्त्ववेत्ताओंने अनुसन्धान कर निश्चय किया है कि, आर्योंकी संसारमें तीन शाखाएं है। एक भारत में, दूसरी ईरान (परशिया) मे और तीसरी युरोप में। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथों में लिखा है कि, बहुतसे आर्य पृथ्वीके विभिन्न देशोंमें गये और ब्राह्मणोंका दर्शन न होनेसे अनार्यभावको प्राप्त हुये। बहुत काल बीत जानेपर आर्योंकी यही पहचान रह गयी कि, वेदो और वैदिक क्रियाओसे जिनका संबन्ध बना हुआ है, वे आर्य और इनसे भिन्न अनार्य है। यो अब संसारमें २२ करोड भारतवासी ही शुद्ध आर्य रह गये है। पारसियोंका धर्म वैदिक धर्मसे मिलता जुलता होनेसे उन्हे अर्ध-आर्य कह सकते है, किन्तु युरोपियन तो निरे अनार्य-भावापन्न हो गये है। २२ करोड आर्य कबसे रह गये ? पुराण-ग्रथोंमें आर्योंकी संख्या अरबों बतायी गयी है। जम्बूद्वीपमे आर्य रहते थे। यह द्वीप बहुत बडा था। काश्मीर (जम्मू) इसका मध्य या केन्द्र था। अर्थात् पूर्वीय युरोपका कुछ अंश और पश्चिमी आशियाखण्ड मिलाकर जम्बूद्वीप था। इतने विशाल द्वीपकी जनसंख्या अरबों खरबोंकी तादादमें होना असमव नहीं है। जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भरतखण्ड और भरतखण्डके अन्तर्गत आर्यावर्त है। हिमाचल और विन्ध्याचलके मध्यका भाग आर्यावर्त माना गया है। वर्तमान समय मे भारतवर्ष की जो चतु:सीमा है, भरतखण्डकी चतु:सीमा इससे बडी थी। काबुल (काम्बोज), खाल्डिया, काकेशस आदि प्रान्त इसीके अन्तर्गत थे। द्वापरके अन्तमें आर्योंकी संख्या १०० करोडसे अधिक होनेके प्रमाण मिलते है। यादवोंके अन्तः कलहके समय उनकी संख्या ५६ करोड होनेका उल्लेख हरिवंशमें है। यह चंद्रवंश था। सूर्यवंशके क्षत्रियोंकी संख्या भी कम नही थी। क्षत्रियोंके अतिरिक्त अन्य तीन वर्णोंके मनुष्योंकी संख्या जोडनेसे कई करोड हो जाना स्वाभाविक है। यवन, म्लेच्छ, शक हूण आदिके आक्रमणो और अत्याचारोंसे क्रमशः भरतखण्डकी चतुसीमा संकुचित हुई और आर्योंकी संख्या घटती गयी। बौद्धकालसे और भी आर्य घटे और मुसलमानोंके समय में तो उनकी संख्या बहुत ही घट गयी। फिर भी प्रसिद्ध मुसलमान प्रवासी फरिश्ताने लिख रक्खा है कि, हिंदुओंकी संख्या ६० करोड है। तबसे ५।६ सौ वर्षोंमें अब २० करोड अर्थात् एक तृतीयांश हिंदु रह गये है। यदि इस समय हम पतितपरावर्तन और हिंदुसंघटनमें पूरी शक्ति न लगावें, तो कितने दिनोंमे हिंदु जाति नामशेष होजायगी, इसका हिसाब लगानेके लिये किसी बडे भारी गणितशास्त्रज्ञकी आवश्यकता नहीं है। (भारतधर्म)

योगी देव ।

(ले० श्री. मक्खान सिंहजी एम् ए. प्रीन्सीपल, श्री. राष्ट्रीय सरस्वती विद्यालय, हाथरस नगर)

रियासत हैदराबाद (दाक्षिण) के जिला बीड में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर श्रीयुत 'देव' शर्मा जी का सन् १९००ई. में जन्म हुआ। योगीजी के पिता का नाम पं० गोकुल प्रसाद था। आपको पाचवर्ष की अवस्था से ही परमेश्वर के ध्यान की बडी चाह थी। जब कभी बचपनमें पिताजीको सन्ध्या करते देखते थे तो आसन मार कर बैठे जाते थे। और मन में ओम् का जप किया करते थे। आपके पिताने आपकी प्रवृत्ति के अनुसार संस्कृत के पढनेही में डाल दिया। संस्कृत में दर्शन शास्त्रों में योग शास्त्रको पढकर आप को योग सीखने की अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। इसी विचार से आप हिमालयके जंगलों में कई वर्ष तक भ्रमण करते रहे। परन्तु कोई अच्छा योगाभ्यासी न मिला। हिमालयसे लौटकर आप लखनऊमें प. पृथ्वीनाथ रंगरू कश्मीरीके वहां छः महीना ठहरे। उसी बीचमें एकदिन पं. जी ने शर्माजी से मेस्मरेजम के विषयमें प्रश्न किया। आपने पन्द्रह दिनकी मौहलत मांगी। ठीक पन्द्रहवें दिन "अघटित घटना पटीयान" परमेश्वरकी कृपासे आपको स्वयं उसका ज्ञान प्राप्त हुआ। और पं० जी के समक्ष कई गण्य सज्जनों को केवल दृष्टि विक्षेपसे बेहोष करके दिखलाया। इसी प्रकार "हिप्नटाइज" के भी क्रमशः एक मासमें कृत्यकर दिखाये। क्रमशः शक्ति का विकास होने लगा। आपसे उड़िया स्वामी से भेट होगई। जब शर्मा जी ने अपना सब वृत्त सुनाया तो उन्होंने कहा कि तुमको "योग" के पहिले जन्मके संस्कार है तुम बडी जल्दी इसमें उन्नति कर सक्ते हो। इस प्रकार प्रसन्न होकर "समाधी" का पूर्ण ज्ञान करा दिया। अभ्यास एवं परिश्रम से आप एक अच्छे योगी हो गये है। इस समय आपकी उम्र पच्चीस वर्ष की है। लोगोंके बहुत कहने सुनने से जो यौगिक शक्ति का एक मामूली चमत्कार हाथरस में दिखाया उसका नीचे विवरण देते है।

यौगिक शक्ति का चमत्कार ।

हाथरस शहर के सुप्रसिद्ध बागला हाईस्कूल में ता. ५ आगस्टकी रात्री में राष्ट्रीय तथा गवर्नमेण्ट स्कूल के विद्यार्थियों तथा शहर के गण्यमान्य सज्जनों, जैसे —

सेठ चिरंजी लाल बागला, प्यारेलाल, श्यामलाल बगला तथा सेठ वंशीधरजी इत्यादि के समक्ष "श्री योगीराज महात्मा देवने, एक मनुष्य को अपने अनेक रूप दिखलाये। वह मनुष्य दायें, बायें, आगे, पीछे, चारों ओर महात्मा देव को ही देखता था। मै स्वयं उसके सामने जाकर खडा हो गया। और कहा कि देखो

सामने क्या दीखता है । तो वह बोला कि आवाज तो किसी अपरिचित व्यक्ति की सुनता हूं परन्तु महात्मा देवको सामने देख रहा हूं । मैने उसका मुंह छत की ओर फेर कर पूछा तो फिर भी उसने वही उत्तर दि-या और वह चिल्ला चिल्ला कर महात्माजी नीचे आइये कहने लगा । यह मनुष्य उनमें से था जो कि यौगिक चमत्कार देखने आये थे । एवं अपरिचित नागरिक था उसका यह कहना है कि न मालूम उस समय मुझको क्या होगया था , कि जिधर मै देखता था उधर योगी जी की मूर्ति ही नजर आती थी।

इस यौगिक चमत्कार को देखकर हाथरसकी जनता में बडी खलबली मची है। कंसवध में जो भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अनेक रूप दिखलाये थे वास्तव में वह कथा सच है । इस चमत्कार को देखकर जो ।कि कृष्ण की विभूतियों को नहीं मानते थे उनको सर पटक कर मानना पडेगी । अन्तमें योगी जी ने अपने लेक्चर में फर्माया कि जो भगवान कृष्ण ने अठारह अक्षौहिणी सेनाके समक्ष जयद्रथ वध में सूर्य के प्र-काश को छिपा दिया था वह सत्य है । श्री कृष्ण भगवान संसार के सबसे बडे योग विद्या के आचार्यों में से थे। उतनी उन्नति आजतक सृष्टि में न किसी ने की न कोई अन्ततक कर सकेगा ।

॥ प्रतिमा ॥

परिच्छेद ३ पाठ १

(ले.–श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पिछले पारिच्छेद में एक पंडित का उदाहरण दिया था उससे आप समझ गए होंगे कि पंडितजी की अ-सफलता का मुख्य कारण उनके विचारों में दृढता का अभाव ही था। पांडितजी की प्रतिमा कि जिनसे वे अप-ने कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करते थे समय समय पर बदल जाया करती थी और यही कारण था कि वे एक भी काम को पूर्ण नहीं कर सके ।

यदि एक मनुष्य नदी में तैरता हो और वह अपने जाने का न कोई स्थान और न कोई मार्ग ही नि-श्चित करे वरन नदी के प्रवाह की ओर ही तैरता जाय, जिस ओर नदी का प्रवाह बदले उसी ओर वह भी फिर जाए तो क्या आप अनुमान कर सके हैं कि वह किसी स्थानको पहुंच सकेगा किं-चित नहीं, वरन वह अल्प काल में ही थक जाएगा

और संभवतः शीघ्र ही अपना प्राणांत संस्कार कर देगा. ।

संसार रूपी यह एक नदी है यदि इसमें हमने पैर रखकर अपना कोई निश्चित मार्ग नहीं सोचा वरन परिस्थिति के प्रवाह से बहाए गए तो निःसंदेह ही जीवन महान् कष्टमय हो जायेगा और हम अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी काम नहीं कर सकेंगे।

आपको अपने जीवनमें कई समय ऐसा हो चुका होगा कि आप अपने मन में एक कार्य को करने की इच्छा प्रगट करते हैं फिर उसे त्याग करने की सम्मति देते हैं, बहुधा कहते हैं कि एक मन तो मेरा इस कार्य्य को करने की आज्ञा देता है और दूसरा त्याग करने की, मैं इस कार्य्य को करूं या नहीं, बडी दुविधा में पडा हूं, क्या करूं, कैसे करूं इत्यादि अनेकानेक एक दूसरे के विरुद्ध और हतोत्साहित करने वाले संकल्प विकल्प उत्पन्न होते है।

यद्यपि इस प्रकार के विचार बहुतायतसे हुआ करते हैं, इनका ठीक प्रकार समाधान कर उचित निर्णय पर पहुंचना बहुत कम व्यक्तिओंका काम है। मानसिक क्षेत्र में इच्छाओंके परस्पर युद्ध होते हैं और इस संग्राम पर विजय प्राप्त करना उन्हीं मनुष्यों का कार्य है जो परिस्थिति के स्वामी है या जो स्वामी बनने की दृढेच्छा रखते हैं। परिस्थिति के गुलाम शत्रु पर विजय प्राप्त कर स्वतंत्रता एवं सफलता के आनंद से सदा वंचित रहते हैं और वे भीरु मृत्यु के पहिले ही प्राण विसर्जन कर देते हैं।

वेद कहता है कि 'अदीनाः स्याम शरदः शतं, अजिताः स्याम शरदः शतं ' अर्थात् हम आयुष्य भर स्वतंत्र और स्वाधीन बनकर रहें, सर्वत्र हम विजय को प्राप्त करें, शत्रुओंसे हमारा बल बढाकर सदा विजयी होंवे।

इच्छा युद्ध का अन्त करने के लिए प्रतिमा ही उत्तम शस्त्र है। परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध इच्छाएं प्रतिमा के साधन से शांत की जा सकी हैं। अनेक इच्छाओं की एक इच्छा बनाकर सारी शक्ति उसी ओर प्रवाहित की जा सकी है।

विचार शक्ति और प्रतिमा से रहित पुरुषों में जब कभी एक दूसरे के विरुद्ध इच्छाएं होती हैं तो उनपर ठीक विचार न कर सकनेके कारण वह किसी निर्णय को नहीं पहुंच सके। वे "करूं या नहीं करूं"के फेर में ही पडे हुए इधर उधर गोते खाया करते है फलतः वे किसी परिणाम को न पहुंच कर अशांत हो जीवन व्यतीत करते हैं।

संसार ऐसे व्यक्तियों से भरा हुआ है कि जो कार्य्य दूसरा प्रारंभ करे उसे आपभी बिना विचारे शुरु कर देते हैं वह इस लिए नहीं कि वे उसे अपना कर्तव्य समझते हैं वरन् दूसरों का अनुकरण करनाही उनकी आदत हुआ करती है। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है वरन ये उस स्वतंत्रता का उपयोग करना नहीं जानते। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को निष्पक्षपात और स्वतंत्रता से प्रतिमा निश्चित कर अपने लिए कर्तव्य और अकर्तव्य निश्चित करना चाहिए।

आपको ज्ञात है कि तोल के साधन(प्रतिमा) निश्चित होने के बिना कोई "कम तोला या अधिक तोला गया" ऐसा नहीं कह सक्ता क्यों कि निर्णय करने का कोई साधन निश्चित नहीं है। जब तक कोई वस्तु अच्छी न समझ ली जाए तबतक कोई वस्तु बुरी नहीं कही जा सकी। न्यायाधीश के सन्मुख न्याय और अन्याय के जांचने निमित्त नियम निश्चित होते हैं तब ही वह एक निर्णय कर सकता है। एक विद्यार्थी ने एक भिन्न हल की हो वरन जबतक उसका उत्तर निश्चित नहीं कर लिया जाये तब तक उसे कोई गलती या सही नहीं कह सक्ता। अर्थात् तबतक प्रतिमा

याने तोलनेका साधन निश्चित न कर लिया जाए तब तक छोटे या बडे गुणवान या दोषयुक्त, भला या बुरा नहीं कहा जा सक्ता।

इस कारण प्रत्येक मनुष्यको अपनी प्रतिमा प्रथम निश्चय कर लेना चाहिए इसके बिना कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं हो सक्ता और यावत् ज्ञान यथार्थ न होगा तावत् कर्म ठीक नहीं हो सक्ता और कर्मके विधि पूर्वक न होने से सफलता नहीं प्राप्त हो सक्ती।

भिन्न भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न प्रतिमाएं हो सक्ती है। जिस प्रकार एक सच्चा वैदिक धर्म्मी अपने आचार और विचार के तोलने अर्थात् उनको भले और बुरे कहने या ठहराने का साधन वेद समझता है। वेद प्रतिपादित- सिद्धांतों के अनुकूल व्यवहार और विचारों को भला और उसमें (वेद) निषिद्ध कर्मों को बुरा समझता है। जिस प्रकार राम का सच्चा भक्त अपने व्यवहारों की तुलना राम के किए हुए कामों से करता है और उन्हीं कर्मों को और उनकी आज्ञाओं को भलाई और बुराई जांचने का साधन समझता है, जिस प्रकार एक सच्चा मुसलमान कुरान की आयतों में प्रतिपादित कर्मों को ठीक और उनके विरुद्ध कर्मों को निषिद्ध ठहराता है ठीक इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यवहार और विचारों को ठीक पहिचानने के लिए अपनी अपनी प्रतिमा निश्चित कर लेनी चाहिए।

हम न तो किसी वेद की ऋचा और न कोई आयत को अपनी प्रतिमा मानने के लिए कहेंगे बरन् प्रत्येक मनुष्य को इस कार्य्य में सब प्रकार के बंधनों को चाहे वे धर्मिक हों या सामाजिक, थोडी देर के लिए मुक्त होकर स्वतंत्रता से विचार करना चाहिए। स्मरण रखिए इस प्रकार स्वतंत्रता और निर्भयता से विचार नहीं करने से आप और किसी का नहीं बरन अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करेंगे। यह कार्य्य आपका है और आपही को बिना किसी की सहायता के निश्चय करना चाहिए।

हम महापुरुषों के वाक्यों को प्रतिमा निश्चित करने के लिए विरोध नहीं करते और न हमारी बतलाई हुइ प्रतिमा का आग्रह करते हैं बरन् स्वतंत्र और निर्भिक विचार पर जोर देते हैं।

भगवान दयानंद ने अपनी प्रतिमा वेदों को निश्चित कीथी अपने विचार और कर्म को वेदो से मिलाते थे और वेदानुकूल आचरणों को विहित और वेद विरुद्ध को निषिद्ध बतलाते थे।

महात्मा गांधी और नेपोलियन की प्रतिमा स्वतंत्रता थी। एककी आशा देशको स्वतंत्र बनाने की है और दूसरेकी अपने आप स्वतंत्र बनने की थी।

प्रातःस्मरणीय राम और कृष्ण की प्रतिमा, धर्म थी। और उनके ऊपर असहय आपत्ति से युक्त कार्य्य आए बरन उन्होंने अपनी प्रतिमा को नहीं छोडा।

भिन्न भिन्न महात्माओं की हमने भिन्न भिन्न प्रतिमाएं हमने उपर्युक्त वर्णित की है बरन् हमारा उद्देश उनमे से किसी एक अथवा सब का आपकी प्रतिमा बनाने का नहीं है। प्रतिमा किसी दूसरे पुरुष की कही हुई इतनी लाभदायी नहीं होती जितनी कि वह होगी जो आप स्वयं स्थिर करेंगे। उपर्युक्त वर्णित प्रतिमाओं में न कोई गुप्त शक्ति है और न किसी तरह का जादू जो आपकी निर्मित प्रतिमा में न हो। आप चाहें तो उनमें से एक पसंद कर लें या स्वयमेव अन्य कोई निश्चित करें।

जिन महात्माओं के नाम हमने ऊपर वर्णन किए हैं यद्यपि सब लोगों के हृदय में इतना समान आसन नहीं है तथापि निष्पक्षपात इतिहासों में इनका नाम मोटे और सुनहरी अक्षरों में लिखा जाता है। और

इसका कारण केवल यही है कि इन महा-पुरुषों ने अपने आपको प्रतिमासे बांधलिया था। अनेक आपत्तियां, असह्य क्लेश और अवर्णनीय बुराइयें आई बरन अपनी प्रतिमा और उद्देश को नहीं छोडा। केवल प्रतिमा-दृढता और उसका अनुकरण ही इसकी सफलता की कुंजी थी।

प्राचीन ऋषियों की प्रतिमा दो अक्षरों में वर्णित की जा सक्ती है और वे अक्षर है अभ्युदय और निश्रेयस। शरीर, परिवार, गृह, जाति, समाज, नगर, राष्ट्र आदिकी उन्नति और इनकी शक्तियों का विकास अभ्युदय है और आत्मा, बुद्धि, मन इन्द्रिय आदि की उन्नति और विकास निश्रेयस कहाता है।

अभ्युदय और निश्रेयस मिलकर ही मनुष्य की सच्ची उन्नति कर सक्ते है। इससे बढकर सर्वांगपूर्ण प्रतिमा और कोनसी हो सक्ती हैं कि जो मानवजीवन के प्रत्येक उन्नति के मार्ग में अपने वास्तविक उद्देश को पूर्ण कर सके।

हमने अनेक प्रतिमाओ का वर्णन किया है बरन् हमारा उद्देश किसी एककी प्रशंसा करने का नहीं है, हम कह चुके हैं और फिरभी कहते है कि प्रत्येक मनुष्य को पर्याप्त विचार करने के पश्चात् ही प्रतिमा निश्चित करनी चाहिए।

मनुष्य की प्रतिमा से उस मनुष्य के विचारों में प्रौढता, कर्मानुरागता और मानसिक शक्ति का परिचय मिल सक्ता है। समय समय पर अनेक इच्छाएं उत्पन्न होकर मनुष्य को अपने निश्चित संकल्पसे पतित करने लगेगी बरन ठीक उसी समय में यह प्रतिमा सच्चे मित्र का कार्य करेगी।

यह प्रतिमा आपके आदर्श का परिचय देती हुइ प्रलोभनो का नाश करेगी जो, अन्यथा समय पाकर शक्तिशाली मनुष्यों को भी पतित कर देते है।

किसी कार्य्य को करने या न करने तथा ग्रहण या त्याग करने के विचार में जहां साधारण मनुष्य कई दिन और कई महिने व्यतीत कर देते हैं वहाँ प्रतिमा का निश्चित किया हुआ व्यक्ति एक मिनिट में अपना निश्चय कर सक्ता है। जिस प्रकार जहाज का निपुण संचालक अपने जहाज को चलाने के समय अपने सन्मुख मार्ग का चित्र रखते हुए जहाज को सुरक्षित पार कर सक्ता है ठीक इसी प्रकार मानव जीवन में आप को कठिनाइयां, आपत्ति और प्रलोभनों से टक्कर खाकर निरुत्साहित बना क्लेशमय अवसरों से बचाकर यह प्रतिमा सफल जीवन बनावेगी।

अपनी प्रतिमा को भलेही वह कोनसी भी क्यों न हो, कभी भी भुलना नहीं चाहिए और चाहे वैसी भी आपत्ति आवे उसे नहीं छोडना चाहिए। आप उस प्रतिमापर दृढ विश्वास रखिए और इतनी श्रद्धा और भक्ति रखिए कि उससे विरुद्ध कोई भी काम या मनुष्यसे जो आपको अपनी प्रतिमासे पतित करनेका प्रयत्न करे, अत्यंत क्रोधित हो जावे।

निःसंदेह प्रतिमा का निश्चय करना जितना सरल है उतना उसको कार्यरूपमें परिणित करना सरल नहीं है। एक कागज और पेंसिल लेकर अपने फुरसतके समयमें कोइ भी मनुष्य थोडासा विचार कर प्रतिमा को निश्चित कर सक्ता है और बहुत से मनुष्य इसी निश्चय से ही अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझ कर फल ढूंढते है बरन इससे लाभ के बदले हानि ही सहना पडती है। प्रतिमा का निश्चय फल नहीं प्राप्त करा सक्ता बरन् उसका अनुशीलन वांछित फल दे सक्ता है।

इस कार्य्य को सुगम बनाने के लिए हम अपने पाठकोंसे निवेदन करते है कि यदि आपने कोई प्रतिमा निश्चित कर ली है और उसके अनुसार कार्य्य

करना कठिन प्रतीत होता हो तो उसे छोडे नहीं बरन जिस प्रकार आपने शुभ कर्मों की तुलना करने निमित्त यह प्रतिमा निश्चित की है ठीक इसी प्रकार बुरे कार्मों की परीक्षा करने निमित्त एक और प्रतिमा निश्चित कीजिए। यदि हम पहिली प्रतिमा को ग्रहण प्रतिमा के नाम से कहें और दूसरी को जो अभी निश्चित की है, त्याज्य प्रतिमा कहें तो ग्रहण प्रतिमा एक और आपके उच्च आदर्श और उन कर्मों को कि जिनका अनुसरण करना चाहते है सूचित करेगी, तो दूसरी और त्याज्य प्रतिमा उन आदर्शों को तथा कार्यो को सूचित करेगी कि जिन्हें आप सर्वदा घृणा की दृष्टी से देखते है। जैसे यदि आपने ऋषिप्रणीत प्रतिमा अभ्युदय एवं निश्रेयस को निश्चित की है और यदि उसे अपनी ग्रहण प्रतिमा मानते हैं तो अन-अभ्युदय और अनिश्रेयस आपकी त्याज्य प्रतिमा होगी। उन्नति के बदले अवनति, नाश, अधोगति और शक्तियों की संकुचितता अनभ्युदय और अनिश्रेयस कहाती है।

प्रत्येक कार्य्य को करने के पहिले उसकी तुलना प्रथम अपनी प्रतिमाओं से करनी चाहिए, और पूछना चाहिए कि क्या यह कार्य्य अभ्युदय और निश्रेयस को प्राप्त कर सक्ता है? यदि उत्तर संतोषजनक मिले तो उसे अपना कर्तव्य समझकर आरंभ कर देना चाहिए और यदि उत्तर "नहीं" में मिले तो फिर त्याज्य प्रतिमा को लेकर पूछना चाहिए कि क्या यह कार्य्य अनभ्युदय और अनिश्रेयस प्राप्त करा सक्ता है? यदि उत्तर संतोष जनक "हां" में मिले तो उस कार्य्य का सदा त्याग कर देना चाहिए क्योंकि उससे आपका नाश और अवनति होगी।

जिस प्रकार कम या अधिक की जांच करने के लिए एक सबसे बडा और एक सबसे छोटा बाट होता है और इनके बीच और भी कई बाट रहते है और वे अपने क्रमानुसार संख्या पाते हैं ठीक इसी प्रकार आपभी एक कागज पर उपर अपनी ग्रहण प्रतिमा लिख लीजिए और सबके नीचे त्याज्य प्रतिमा; और इन दोनों के बीच में आपभी अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार और दूसरी प्रतिमाएं निश्चित कर उनकी योग्यतानुसार क्रम से लिखिए। शुभकर्म में प्रवृत्त करनेवाली प्रतिमाएं ऊपर और अशुभ कर्मसे निवृत्त करने वाली प्रतिमाएं अपनी योग्यतानुसार नीचे लिखिए।

सबसे प्रथम नीचे की प्रतिमा से कार्य्यारंभ कीजिए और उत्तरोत्तर उन्नति करते जाइए। ये सब प्रतिमाए आपको कंठस्थ होनी चाहिए कि जिससे आप इन्होंका उपयोग सर्वत्र कर सकें।

प्रलोभन के वशीभूत हो, या किसी के खंडन किए जाने पर या किसी के विरुद्ध मत को सुनकर या और किसी किए गए प्रश्नसे कभी भी अपनी प्रतिमा में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इस प्रतिमा में आप इतना प्रेम, श्रद्धा एवं दृढता रखिए कि आप इसे कभी भी नहीं छोडे, जबतक कि आप स्वयंही एकांत और स्वतंत्र विचार-द्वारा अपनी बुद्धि से उसमें शोध करना योग्य न समझें।

हम किसी अन्य पुस्तक में इसका विवेचन लिखेंगे कि तीव्र बुद्धि भी सदा न्याय नहीं करती और न इच्छाही सर्वदा हितकर पदार्थों की प्राप्ति में होती है। इस कारण, लोग बुरे कहते है या जनता इस सिद्धांत को घृणा की दृष्टि से देखती है या स्वार्थवश होकर अपनी प्रतिमा का उल्लंघन करना अच्छा नहीं।

जो कुछ भी हमने उपर वर्णन किया है उस सिद्धांत के आविष्कर्ता न हम है और न इसका गौरव आधुनिक जगत के किसी पुरुष को दिया जा सक्ता है, बरन ये सिद्धांत बहुत पुराने है और ऋषियों की सूक्ष्म

बुद्धि का परिचय दे रहे हैं। पूर्व काल के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस सिद्धांत का प्रचार उस समय में अधिक था और मनोविज्ञान शिक्षा का मुख्य अंग समझा जाता था और यही कारण है यद्यपि इसका प्रचार उसकी वास्तविक दशामें नहीं है तथापि उसकी परिवर्तित दशा में अवश्य है।

यह एक सर्वमान्यनियम है कि प्रत्येक नियम की वह दशा जो उसके निर्माण कर्ता के काल में रहती है उसकी मृत्यु के पश्चात् नहीं रहती। काल के साथ साथ उस नियम में भी परिवर्तन हो जाना है। इतिहास इसका साक्षी है।

ऋषियों ने प्रतिमा का महत्त्व बतलाया, इसकी शिक्षा का प्रचार किया, इसकी पूर्ति के लिए त्याग और तप आवश्यकीय बतलाया यहां तक कि प्रतिमा के लिए सर्वस्व बलिदान देने को कहा। शिक्षा प्रणाली भी इसी प्रकार रखी जाति थी कि ये भाव जनता मे जागृत और प्रबल हो जाते थे। धन्य है उनकी शिक्षा प्रणाली को कि यद्यपि इतना काल व्यतीत हो चुका है और उनके सिद्धांतोंका प्रचार बिलकुल नहीं है तथापि आजभी उन ऋषियों की संतान मे अपनी प्रतिमा को निभाने की शक्ति अवश्य है। हम कह सक्ते हैं कि हमारी और ऋषियोंकी प्रतिमा में अंतर हो गया है। जो प्रतिमा उनकी थी वह निःसंदेह हमारी नहीं है तथापि प्रतिमा में दृढता और उसको कार्य्य परिणित करने की शक्ति में उतना परिवर्तन नहीं हुआ है कि जिसे हम " नहीं " कह सकें।

कई लोगों को इसमें संदेह है बरन दिलिए-प्राचीन काल के राजालोग अपनी प्रजा के हित में अपना हित समझते थे। राजा दशरथ को रामचंद्र के राज्याभिषेक करने की तीव्र इच्छा होने पर भी अपने सिद्धान्त के अनुकूल प्रजा जनों को बुलाकर उनसे परामर्श ली। महाराजा रामचंद्रने अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए अपनी स्त्री तक का त्याग कर दिया और अपनी प्रतिमा को निबाही। आधुनिक काल के राजा अपने हित मे प्रजाका हित समझते हैं और अपनी इस प्रतिमा को निभाने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं और रास्ते में चाहे कितनी भी आपत्ति आवे सबको सहन करते है। यह हमारा प्रत्येक का अनुभव है। दोनों राजाओं मे भेद है तो केवल प्रतिमाका, कार्य्यपरिणितता का नहीं।

महाराजा रामचंद्र ने रावण को मारने के लिये प्रत्येक उचित उपाय सोचे केवल उसके दुःष्ट स्वभाव और स्त्रीजातिका मान रखने के लिए। आज हमें भी देश में असंख्य उदाहरण मिलते है कि जहां एक भाई अपने भाई का खून करने के लिए प्रत्येक अनुचित उपाय सोचता है केवल उसके भाई होने के कारण और अपना मान रखनेके लिए। यदि और कोई दुश्मन हमें लूट भी ले जाए या अन्य कोई अत्याचार कर जाए तो हम स्वतः ही उससे क्षमा याचना कर लेंगे दोनों के कार्य्य मे कष्ट है, त्याग बुद्धि है, परिश्रम है बरन यदि अंतर है तो केवल प्रतिमाका। एकने अपने देश की रक्षाके लिए दुश्मनसे युद्ध किया तो दूसरे ने अपने मान के लिए गृह युद्ध किया। बरन त्याग और तपका अभ्यास (न्यूनाधिक अंशमें) अवश्य है।

आदर्श चरित्र वाले भरत ने निर्दोष होते हुए भी रामचंद्र के चरण कमलों में प्रीति रखकर अपना भ्रातृधर्म निबाहा। लक्ष्मण ने चित्रकूट पर्वत पर भरत मिलापके समय भरत का हनन करने में कोई पाप न बतलाकर रामचंद्रसे उस कार्य्य के लिए आज्ञा मांगी। महाराजा रामचंद्र ने भी वनोवास से लौटते समय हनुमान से कहा था कि तुम जाकर

भरत की अवस्था पर विचार करना, अयोध्याके लोगों ने उसे कटु शब्द कहकर अनेक बार धिक्कारा और वनोवास के भयानक षडयंत्र का मुख्य कर्ता समझा बरन उस विमल हृदय ने सब कुछ सहकर अपना धर्म निबाहा। उसमें सहनशीलता और धर्मपरायणता ही अधिक थी। आज भी इन शक्तियोंसे युक्त पुरुषो की कमी नही है। एक अछूत चाहे हमसे उत्तम प्रकार रहे, परमेश्वर की भक्ति करे, मांस, मदिरा का सेवन चाहे न करे, हमारे ऊपर चाहे कितना भी उपकार करे बरन वह भले ही तडफ तडफ कर मरजाए बरन हमारा हृदय कभी उस से मस न होगा। हमारी क्या अवस्था है, देश की क्या हालत है, विधर्मीयोंद्वारा हमारे माता और पिता की क्या दशा हो रही है बरन हमारे धर्मका त्याग करना महापाप है चाहे सर्व नाश ही क्यों न हो जावे। देखिए ? कितनी दृढता और धर्मपरायणता है। हमे तो दोनों मे समानता शक्ति दृष्टिगोचर होती है। हम हमारी समझ से हिन्दुओं को कमजोर नही कहते बरन हिंदुओंके आदर्श को दुर्बल कहेगे। किसी महात्माने कहा है कि उपदेशसे आदर्श अधिक प्रभावोत्पादक होता है। हिंदुओंके आदर्श के साथ साथ उनकी प्रतिमाऐं भी कमजोर है कि जिनके कारण उन्हें कर्तव्याकर्तव्य भेद नही ज्ञात होता।

हम आर्य्य–समाज और हिन्दू समाज की ओर जब विचार फैलाते है तो हमे इस सिद्धात का रहस्य और भी खुल जाता है। आर्य्य-समाज में जीवन है, उत्साह है, कार्य्य करने की रुचि है और संगठन है बरन हिंदू समाज इतना विशाल होते हुए भी निर्जीव है। जब आर्य्य-समाज मे सब लोग हिंदू-समाज के ही है तो फिर क्या कारण है कि दोनों मे इतना भेद है। महर्षि दयानंद ने इस सिद्धांत को अच्छे तरह समझ लिया था और इसी कारण उसने सबसे प्रथम आर्य्य-समाज का आदर्श और प्रतिमा बदल दी।

हम हिन्दू समाज को कम जोर नही कह सक्ते बरन उसका आदर्श शिथिल है। यदि हिंदू समाज बलहीन होती तो गुरु गोविद सिंह पंजाब मे उस भयंकर समय मे हिन्दू राज्य की स्थापना नही कर सक्ते थे, वीर शिवाजी औरंगजेब सदृश एक योग्य मुगल सम्राट् को परास्त नही कर सक्ता थे।

हमारा विषय इस पुस्तक में हिंदू-समाज पर प्रकाश डालना नहीं है बरन हमारा यह अभिप्राय था कि किस प्रकार उद्देश के निश्चित करने मे व्यक्ति और समाज में एक नवीन शक्ति और उत्साह उत्पन्न होता है कि जिसकी सहायता से कठिन से कठिन कार्य्य साध्य हो सक्ते है। पहिले उद्देश मे परिवर्तन होता है तत्पश्चात् शक्ति में विभिन्नता आती है।

इस कारण जीवन के उद्देश और प्रतिमा को निश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। संकल्परूपी यंत्र मे नवीन शक्तिका संचार और उसका मार्ग निष्कंटक हो जायगा।

पाठ २

तुलनात्मक विचार।

मनुष्यकी इच्छाएं अनन्त है; वह अनेक कामों को करना चाहता है बरन् उसकी शक्तियां परिमित होने के कारण वह सब इच्छाओंको पूर्ण करने में असमर्थ है। मन मे प्रवेश करने के लिए किसी भी इच्छा को रोक ठोक नहीं है। चाहे कोनसी भी इच्छा चाहे जिस समय मन मे जा सक्ती है। एक इच्छा मन में उत्पन्न होती है वह अपने विषय को प्राप्त करने के लिए संकल्प की शक्ति का उपयोग करती है कि थोडी देरके पश्चात् दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है और वह भी अपने विषय को प्राप्त करने के लिए संकल्पशक्ति

का आवाहन करती है और सकल्प- शक्ति जो एक ओर लगी हुई थी अब दो ओर विभक्त होगई। इसी प्रकार संकल्प शक्ति कई भागों में विभक्त होकर शिथिल होजाती है क्योंकि इच्छा के लिए तो कोई रोकटोक है ही नहीं.

यदि अपने देशकी रक्षा के लिए एक सेना की आवश्यक्ता पडे और उस सेना में प्रवेश होने के लिए कुछ भी नियम न हो तो निःसंदेह उस सेना में मनुष्यों की संख्या अधिक हो जाएगी बरन उस सेनाकी शक्ति नहीं बढेगी और न वह सेना ही सेना का काम कर सकेगी। उस सेना से देश की रक्षा नहीं हो सक्ती क्योंकि उसमें आपके शत्रु भी आकर रहेगे छोटे बच्चे जो कि केवल भार रूप होंगे वे भी आकर उसमें मिल जाएंगे और परिणाम यह होगा कि रक्षाके बदले वह सेना नाशका कार्य करेगी। ठीक इसी प्रकार यदि इच्छाओंके लिए भी कोई नियम नहीं रखा जायगा तो वे भी कल्याण करने के बनिस्बत नाश करेगी।

यदि देश का प्रबंध आपके हाथमे दे दिया जाय और यही सेना भी दे दी जाय तो फिर आप क्या करेगे। क्या इस प्रकार के अनुपयोगी, भार रूप और अहित चाहने वाले सिपाहीयों से युक्त सेना देश की रक्षा कर सक्ती है सर्वदा असंभव है। उत्साही और शक्तिसंपन्न दस योद्धा जो कार्य्य कर सक्ते है उतना कार्य्य भी १००० मनुष्य ऐसी सेना में नहीं कर सक्ते। क्योंकि उनके अन्दर देशसेवाके भाव नहीं, प्रेम नहीं, सगठन नहीं, शक्ति नहीं, उत्साह नहीं, और न कार्य करनेकी कोई प्रणाली है, इस कारण सबसे प्रथम आपको इस सेना का संगठन ठीक करना पडेगा।

सबसे पहिले सारी सेना को अपने सन्मुख खडा कराइए और प्रारंभसे अंततक अवलोकन करिए। (२) बालक और वृद्ध आदमी जो शक्ति से हीन है और सैनिक कार्य्य के अयोग्य है निकाल दीजिए। (३) जो अपनी इच्छासे नौकरी करना चाहें उन्हें ही रखिए और औरोंको पृथक करिए। (४) जिन्हें आपके देश का गौरव नहीं है, देश प्रेम नहीं है उन्हें पृथक करिए। (५) बचे हुओं में तुलनात्मक दृष्टि से देखिए जो अधिक साहसी, पुरुषार्थी अनुकूल एवं आज्ञापालक हो उन्हें रखिए और बाकी को निकाल दीजिए। अब आपकी सेना उन्हीं मनुष्यों से युक्त मिलेगी जो आपमें प्रेम रखते होंगे और सैनिक कार्य्य के लिए सर्वदा योग्य है।

आपका मन भी ठीक इसी प्रकार की सेना के समान है; जिसमें असंख्य इच्छाएं प्रवेश हो चुकी है। कोई अनुकूल है तो कोई प्रतिकूल, कोई हितकारी है तो कोई अहित करनेवाली, जितनी इच्छाएं है न उन सब की पूर्ति हो सक्ती है और न उन सबके लिए एक समयमें प्रयत्न हो सक्ता है क्यों कि उनमें कई इच्छाएं ऐसी भी हैं जो दूसरी इच्छाओं के प्रतिकूल है और एक की पूर्ति दूसरी इच्छाओं के बलिदान की आवश्यक्ता रखती है। इच्छाओं के अनेक होनेके कारण मनुष्य की शक्तियां विभक्त होकर कमजोर हो जाती है और चिन्ता के कारण शिथिल पड जाती है। यही कारण है कि परिस्थिति के गुलाम मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कोई कार्य्य नही कर सक्ते।

इस कारण यावत् आप अपनी वास्तविक इच्छा का स्वरूप नहीं पहिचानेंगे तावत् आप उसकी पूर्ति नहीं कर सक्ते। जिस प्रकार नियमों द्वारा उक्त सेना अल्प व्यय में सुव्यस्थित रूप में परिणित की जा चुकी थी ठीक इसी प्रकार थोडे समय में और थोडे परिश्रम से वांछित फल की प्राप्ति के लिये इच्छाओं को नियमों से बांधने की आवश्यक्ता है।

उक्त सेना के अनुसार यहां भी अपनी सब इच्छाओं को एक कागज पर लिख लीजिए। चाहे इच्छा

हार्दिक हो या किसी अन्य कारणसे मनमें उत्पन्न हुई हो, प्रत्येक इच्छा को लिखिए। तत् पश्चात् अपनी प्रतिमाओं से तुलनात्मक विचार कीजिए। जो त्याज्य प्रतिमा का "हां" में उत्तर दे उस इच्छा को उस पत्र पर से काट डालीए और जो ग्रहण प्रतिमा का "हां" में उत्तर दे उसे रहने दीजिए। तदनन्तर जो इच्छाएं स्वयमेव उत्पन्न नहीं हुई बरन अपर व्यक्तियों के कथन मात्रसे इच्छाके रूप में आचुकी है और जिन का निश्चित रूप से चाह नहीं है उन्हे भी पृथक कर दीजिए। इस समय कई इच्छाएं इस प्रकार की भी होंगी जो परिणाम में एक होंगी बरन संख्या और शब्द भेद से पृथक पृथक गिनी गई होंगी; इस कारण इस प्रकार की भिन्न भिन्न इच्छाओं को भी कि जिनका फल एक ही हो काट डालिए।

जिन इच्छाओं की पूर्ति में आनंद कम है बरन परिश्रम अधिक है उनको भी काट डालिए। इस समय तर्कका यथावत् उपयोग कर परिश्रम, आनंद, समय और दृढता का विचार कीजिए। जिनकी पूर्ति में कम परिश्रम, आनंद अधिक, कम समय और जिनकी मन में स्वाभाविक दृढता हो उन्हीं इच्छाओं को रखिए अब यह विचार कीजिए कि आपकी इच्छाओं में कोई एक दूसरे के प्रतिकूल इच्छा तो नहीं है, यदि अभी तक भी इस प्रकार की कोई इच्छा जीवित रह चुकी हो तो उन विरुद्ध इच्छाओं में फिर आपस में तुलना कीजिए और अपनी बुद्धि का सदुपयोग करते हुए दोनों में से एक को पृथक कर दीजिए।

कृपया दया और क्षमा का उक्त विवेचन में तनिक भी उपयोग न करिए क्योंकि संग्राममें दुश्मनोंको सच्चे बीर दया और क्षमा का परिचय नहीं देते बरन रणभूमि में तो दृढता तथा शक्ति का पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

इस इच्छा-युद्ध के उपरान्त अब वेही इच्छाएं बचेंगी कि जो आपके सर्वदा अनुकूल है और जो अब पहिले के बनिस्बत बहुत न्यून संख्या में होंगी। ये इच्छाएं अवश्य वे होंगी जिन्हे आप अपने हृदयसे चाहते होंगे और जिनकी पूर्ति करने में आपको कष्ट भी प्रतीत न होगा और यही इच्छाएं आपकी प्रकृति का वास्तविक परिचय दे सकेंगी। इस तुलनात्मक विचार में आप अपनी बुद्धि, स्वतंत्र विचार, अनुभव, स्मृति और तर्क का आवश्यक उपयोग कीजिए।

कई मनुष्य इच्छा के इस निर्णय पर बिना स्वतंत्र विचार के पहुंच जाते है बरन इस प्रकार के निश्चय से यथेष्ट सिद्धिको कभी नहीं प्राप्त होते!

तुलनात्मक विचार की सहायता उद्देश को निश्चित करने में ही आवश्यक नहीं है बरन उसे कार्य्य रूप में परिणत करने के लिए भी आनिवार्य है! हम हमारे पाठकों के सन्मुख एक दृष्टांत रखते है उससे ज्ञात हो जायगा कि तुलनात्मक विचार उद्देश को कार्य्य रूप में परिणित करने के लिये कितना उपयोगी है।

एक यौवन पुरुषने विवाह करना निश्चित किया। उसकी बुद्धि, शक्ति और विद्याका परिचय पाकर अनेक लडकियो ने विवाह करने की इच्छा प्रगट की। उक्त पुरुष न उन सब लडकियों से विवाह कर सक्ता है और न सब को प्रसन्न रख सक्ता है। ब्रह्मचारी का विवाह एक ही कन्यासे होना है और जिसके साथ उसका विवाह होगा वही उससे प्रसन्न होगी और बाकी सब अप्रसन्न होगी अब वह उन सब का परिचय पाकर एक पत्र पर उनका नाम लिख लेता है और साथ ही प्रत्येक के गुण भी उस नाम के सन्मुख लिख लेता है (१) रूपवान और सुन्दर है (२) सुंदर और वय में बडी है।

३ कुरूपा और धनी, (४) बृहत् परिवार वाली तथा निर्धन,(५) लडाकू और धनी, (६) चपल एवं दुराचारी,(७) पठित और दूर देश में रहनेवाली है (८) व्यङ्ग तथा धन प्राप्ति का साधन (९) पति की आज्ञा के विरुद्ध चलना ही जिसका धर्म है और बलिष्ठ है और प्रतिष्ठित है (१०) कला कौशल्य में निपुण तथा रावण की बहिन सूर्पनखासी नाक रहित है इत्यादि इत्यादि इसप्रकार सब के नाम और गुण लिख कर वह ब्रह्मचारी अपना विचार प्रारंभ करता है।

संतानोत्पत्ति और सुखमय जीवन व्यतीत करना विवाह का उद्देश है। सतान उत्पन्न कर उनको सुशिक्षा और भरण पोषण का उचित प्रबंध करना मेरा कर्तव्य होगा। तत्पश्चात् वहभी विचारता है कि यदि मेरे और मेरी स्त्री के विचारों में समानता यदि नहीं हुई तो गृह कलह को प्रतिदिन निमंत्रण देना पडेगा। इस प्रकार विवाह के निर्णय करने के लिए उद्देश, कर्तव्य, तर्क और अनुभव का यथावत विचार करता हुआ वह ब्रह्मचारी प्रत्येक के गुणो मे अपना हेतु सोचता है १ स्त्री का रूप, २ स्त्री अधिक ३ कुरूप ४ बृहत् परिवार ५ झगडालू स्वभाव ६ दुराचार ७ पठित होना, ८ व्यंग ९ प्रतिकूलता १० कला-कौशल्य इत्यादि.

आजन्म का प्रश्न है, विवाह हो चुकने के पश्चात् चाहे कितनी भी आपत्तिया आवे बरन एक ने दूसरे का त्याग करना मानवी मर्यादा के बाहर है। इस समय थोडी सी गलती करने से या दूसरों के कहने में आने से या किसी प्रलोभन या अन्य किसी प्रभाव से प्रेरित होकर कार्य्य करने से भावी जीवन कंटक एवं निराशामय हो जाएगा।

अपने पूर्व अनुभव का विचार करता है कि मुझे किस प्रकार के मनुष्य द्वारा शांति की प्राप्ति और दुःख का नाश हो सक्ता है, तर्क और बुद्धि का यथावत् उपयोग करता है।

ठीक इसी प्रकार ही मनुष्य को उद्देश और उसे कार्य रूप में परिणित करने के लिये तुलनात्मक विचार का उपयोग करना चाहिए बिना तुलनमूलक विचार के संकल्प में दृढता और कार्य्य परिणित होने की शक्ति नहीं प्राप्त हो सक्ती।

पाठ ३

निश्चय।

किसी संकल्प के निश्चय करने में दो क्रियाए होनी है। एक तो तुलनात्मक विचार कर एक निर्णय को पहुंचना एवं द्वितीय उस निश्चित किए हुए सकल्प को मनमे दृढता पूर्वक रखना। पहिली क्रिया एकगति का अंत और विचारों का परिणाम और दूसरी नई धारणाका प्रारंभ बतलाती है अर्थात् किसी सकल्प को करने में एक मानसिक क्रिया का अंत और दूसरी क्रिया धारणा का प्रारंभ होता है।

गत पाठ में जो विवाह का दृष्टात दिया था उस पर यहा कुछ और वक्तव्य है। ब्रह्मचारी के मन मे दो क्रियाएं हुई (१) विवाह की इच्छा (२) तुलना-मूलक विचार. इन दो गतियों को समाप्त कर ही वह ब्रह्मचारी मनमें विवाह का संकल्प धारण कर सका था। बरन निर्णय सकल्पका प्रथम अंग है। संकल्प यावत् कार्य्य रूपमें नहीं परिणित किया जाता तावत् संकल्प अधूरा कहा जाता है। अर्थात् १ इच्छा २ तुलनात्मक विचार ३ निश्चय ४ परिश्रम (कार्य्य परिणितता) इन चार गतियों को समाप्त करने पर हीं संकल्प कहा जा सक्ता है। संकल्प की क्रिया जो पाहिले इच्छा के रूप में प्रगट हुई थी न तुलनात्मक विचार से और न निर्णय करने से बरन कार्य रूप में परिणित होने से ही समाप्त होती है।

कायस्थ वर की आवश्यकता।

मेरे एक कायस्थ मित्र (सकसेना दूसरे)की चौदह वर्षीय कन्याके लिये वर की आवश्यकता है जो कायस्थो के बारह विभागों में से किसी भी विभाग का हो, आयु २०-२२ वर्ष की हो, पढा लिखा, सुंदर, सुशील, स्वस्थ, सदाचारी तथा आर्यसामाजिक परिवार का हो। यदि पढता हो तो कम से कम मैट्रिकपास हो। यदि व्यवसाय करता हो तो कम से कम ५०) मासिक उपार्जन करता हो। कन्या पढी, लिखी, सुशीला, सुंदर, स्वस्थ तथा गृहकार्य में कुशल है।

आवश्यक पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिये
शिवदयालगुप्त सबअसिस्टेंट सर्जन, इटावा
(कोटा राज्य) राजपूताना